# आनन्द-मधु-मन्दाकिनी

## प्रथमः प्रवाहः

( १ )

काव्य-कल्लोलिनी

( २ )

भाव--कल्लोलिनी

( ३ )

विभाव-कल्लोलिनी



कविः—

आनन्द झा

प्रधानः—

प्राच्य—संस्कृत—विभागः

लखनऊ—विश्वविद्यालयः

लक्ष्मणपुरम् ।

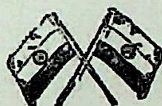
दिल्लीविश्वविद्यालय - संस्कृतविभागा-
ध्यक्षाय, विद्वद्वर डा. सत्यव्रत-शास्त्रिणे
सस्नेहं प्रदत्तम्

आनन्द झा
२-४-७८

# आनन्द-मधु-मन्दाकिनी

## प्रथमः प्रवाहः

( १ )
काव्य-कल्लोलिनी
( २ )
भाव--कल्लोलिनी
( ३ )
विभाव-कल्लोलिनी



कविः—

**आनन्द झा**

प्रधानः—
प्राच्य—संस्कृत—विभागः
लखनऊ—विश्वविद्यालयः
लक्ष्मणपुरम् ।

प्रकाशकः—

आनन्द झा

प्रधान :—
प्राच्य-संस्कृत-विभागः
लखनऊ विश्वविद्यालयः
लक्ष्मणपुरम् ।

मूल्यम्—७ रूप्यकाणि ।

प्रबन्धकः—
बिजय शंकर वर्मा

अक्षर—संयोजकः—
रामशंकर जोशी

मुद्रकः—
आशा प्रिंटिंग प्रेस,
मनकामेश्वर नगर, लखनऊ—७

# प्रास्ताविकं किञ्चित्

धीधनाः सहृदयाः संस्कृत-प्रणयिनः !

राष्ट्रस्यास्योत्थानयुगेऽस्मिन् काऽस्ति परिस्थितिः संस्कृतायाः वाचः कियती चापेक्षिता नूतनया पद्धत्या तत्प्रचार—चेष्टेति न तिरोहितं भवादृशां मनीषिणाम् । ततो विरच्य नूतनानि संस्कृत-काव्यानि सत्यप्यर्थाऽसौविध्ये प्रकाश्य कथञ्चित् स्वव्ययेनैव समुपस्थापितानि तान्येतानि पुरतश्श्रीमताम् । सत्यामपि सावधानतायां मुद्रणस्यानेकसाध्यतया वर्तमानाः काश्चनाशुद्धीः संशोध्य पठनीयम् श्रीमद्भिरिति किं नाम निवेद्यताम् ? मन्ये स्वीकृत्य रचनामिमा मन्या-प्रकाशित-रचना-प्रकाशने ध्रुव मस्मत्साहाय्यं विधास्यन्ति भवन्त इत्यलमधिकेनेदानीम् । इति

भवदीय :—

**आनन्द झा**

# विषय-सूची



## काव्य—कल्लोलिनी

# विषय सूची





## ※ भाव—कल्लोलिनी ※



## ※ कवि—परिचयः, विभाव-कल्लोलिनी ※

| पृष्ठम् | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
| --- | --- | --- | --- |
| १ | २ | दुज्वलाज्वल | दुज्ज्वलोज्ज्वल |
| २ | १० | नमत्णति | न मत्प्रणति |
| ३ | १ | जनसु-खदे! | जनसुखदे! |
| ३ | ४ | कविहृत्प्रतिया | कविहृत्प्रतिभा |
| ३ | ६ | करदेः | करदे! |
| ३ | १० | परदेः | परदे! |
| ४ | ११ | सुन्दिल | तुन्दिल |
| ४ | १२ | न तगण पालम् | नतगणपालम् |
| २२ | ४ | परिभाव के | परिभावके |
| २९ | ७ | नाश्र | नात्र |
| ३० | ५ | कर्वकहृदयम् | कर्षकहृदयम् |
| ३१ | १ | वयमुत्थाद्य | वयमुत्पाद्य |
| ३१ | ५ | तद्युत्तरदायित्वं | तद्युत्तरदायित्वं |
| ३२ | १ | रक्षणोऽति | रक्षणेऽति |
| ३४ | ५ | बान्धवाः | बान्धवाः |
| ४१ | ५ | अच पल | अचपल |
| ४१ | ५ | त्यजस्नं | त्यजस्त्रं |
| ४२ | ६ | दिवसकरावृदया | दिवसकरेह्य् उदया |
| ४३ | १० | स्त्रिमिता | स्तिमिता |
| ४७ | ६ | र्विहिता | विहिता |
| ५१ | १ | कोमलाङ्गीं भिना | कोमलाङ्गीं मिमा |
| ५१ | १० | महदाजेन्द्र | महद्राजेन्द्र |
| ५३ | ७ | श्री धामाचरणौ | श्रीषामाचरणौ |
| ५७ | ७ | लकिता | लतिका |
| ६१ | २ | सकलवानवन | सकलवनावन |
| ७३ | ४ | फूत्कृतिरेनि | फूत्कृतिरेति |
| ७३ | ६ | राचितऽपि | राचिताऽपि |
| ७६ | ८ | वार्न्निनां | वर्तिनाम् |
| ९० | ३ | मुखेह्य सुख | सुखे ह्यसुख |
| १०८ | ४ | क्षमा स्यात | क्षमा स्यात।। |
| ११५ | ७ | राष्ट्संसेविनों | राष्ट्संमेविनां |
| ११८ | ९ | भिन्नोपायालम्बा | भिन्नोपायालम्बनं |

| पृष्ठम् | पंक्ति: | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|---|



### ※ भाव-कल्लोलिनी ※

| | | | |
|---|---|---|---|
| २ | २ | सृक्कद्वयी | सृक्कद्वयी |
| २ | २ | नित्यं: | नित्यं |
| ५ | २ | संछादितान्त | संछादितानन्त |
| ८ | १६ | याङ्कश | याङ्कुश |
| ९ | ७ | गलप्रोद्वल | गलप्रोद्गल |
| ९ | ८ | चालङ्कता | चालङ्कृता |
| ९ | ११ | चाशिवन्त्या | चाऽऽपिबन्त्या |
| १५ | ३ | प्रप्रत | प्रपीत |
| १५ | ९ | गंलास्फुर | गंलाग्रस्फुर |
| १५ | १६ | विद्योमानस्य | विद्योतमानस्य |
| १७ | २ | शुश्वेत | सुश्वेत |
| १७ | १० | सत्कन्ठ | सत्कन्ठ |
| १७ | १४ | सङ्कीतजं | सङ्गीतजं |
| १६ | १६ | सम्फल्ल | सम्फुल्ल |
| २० | ७ | हित्कुम्भ | हि तत्कुम्भ |
| २१ | १३ | तत्य नेष्टाप्ति | तस्य नेष्टाप्ति- |
| २४ | ९ | विष्णु तवैव | विष्णुस्तवैव |
| २६ | ६ | ऽमित करे | ऽमितकरे |
| २६ | ५ | विकराग्र दंष्ट्रे | विकटाग्रदंष्ट्रे |
| २८ | ९ | रत्नाकराय | रत्नाकरस्य |
| २९ | १ | त्वं शुभा | त्वं सुभा |
| २९ | १३ | दन्दाभ | दन्ताभ |
| ३१ | १४ | स्वशन्मूिको | स्पर्शान्मूिको |

### ※ ऋतु—कवित्वम् ※

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३ | ३ | सहसोऽयं | सहासोऽयम् |
| ८ | ७ | वगन्तुस्ति | वगन्तुमस्ति |
| ७ | ९ | कुटोजोटजानां | कुटजोटजानां |
| ८ | १२ | तेजस्कणा | तेजःकणा |
| १२ | १२ | ऽभष्यिन्ननु | ऽभविष्यन्ननु |
| १३ | ८ | त्वां प्रणम्य | त्वां प्रणम्य |

| पृष्ठम् | पंक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|---|
| १४ | १६ | वह्निकणा | वह्निकणा |
| १६ | ११ | अभाद्वहाः | अभावाद्वहाः |
| १६ | २० | रानच्छद्भि | रागच्छद्भि |
| २२ | १४ | गृहणतीय | गृह्णतीय |
| २४ | १८ | वह्वेत | वह्वेत |
| २७ | २० | वर्धत | वर्धत |
| २८ | १३ | इमा काश्चित् | इमाः काश्चित |
| २८ | १६ | दोलनानाभि | दोलनाभि |
| ३० | ६ | प्राच्चौरिय | प्रोच्चैरिय |
| ३० | ६ | सहस्त्राक्षा | सहस्राक्षा |
| ३१ | १५ | सर्वबहुरक्त | सर्वबहुरक्तं |
| ३२ | १ | निरभ्रतयाऽऽकशं | निरभ्रतयाऽऽकाश |
| ३३ | १ | वालबृद्धनां | वालवृद्धानां |
| ३४ | ५ | ऽतिरम्ये | ऽतिरम्ये |
| ३५ | ३५ | वक्तं | वक्तुं |
| ३५ | १४ | मधुपदेच्छ | मधुपच्छद |
| ३६ | १० | ऽलङकृत्य | ऽलङ्कृत्य |
| ३७ | १५ | तृणाक्रमा | तृणाग्रक्रमा |
| ४२ | ६ | लानयन | लानयने |
| ५६ | १ | सप्यं | सत्य |

## ❋ शृङ्गार-शेर-शतकम् ❋

| | | | |
|---|---|---|---|
| २ | १० | बद्धोर | बद्धो |
| ८ | ७ | खण्नेन | खण्डनेन |
| ९ | १४ | सऽथ | साऽथ |
| १० | १० | पमोधरौ | पयोधर |
| ११ | ८ | प्राप्तमप्रर्दनः | प्राप्तमर्दनः |
| १३ | ८ | क्षीयते | दीयते |
| १३ | १२ | स्त्रिक्षियं | शिक्षितं |
| १४ | ३ | कथमामि | कथयामि |
| १६ | ९ | ऽद्भूनः | ऽद्भुतः |
| ६ | १३ | कारुण्यं मद्भूतो | कारुण्यमद्भुतो |



——०——

# आनन्द-मधुमन्दाकिनी

## ✱ प्रथमः प्रवाहः ✱

# काव्य-कल्लोलिनी

✱

### मङ्गलम्

[ १ ]

यस्याः कोटिशशाङ्करम्यनखर–प्रोद्भासि–पादाम्बुज-
प्रक्षेपस्खलदुज्ज्वलोज्ज्वलरजोराजि विभूतिच्छलात् ॥
धृत्वा शूलभृदप्यभून्ननु महामृत्युञ्जयो भूतिमान् ।
सा भव्यानुभवाय भातु हृदये भीमाऽऽकृतिर्भारती ॥

[ २ ]

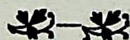
चरण--प्रणताऽशेष—हृदाऽऽवरणवारिणी ।
उदेतु हृदये काऽपि सवीणा करुणा मम ।।

[ ३ ]

हरिहरसत्कृतचरणा,
तरुण—निशाधीश—सप्रभाऽऽभरणा ।
अरुणा काचन करुणा,
दलिताऽऽवरणा हृदि स्फुरतु नित्यम् ।।

[ ४ ]

यदीयवदनस्फुरन्नवनिशाकरप्रोज्वला,
मुपास्य सुरभारतीमहमभूवमेतादृशः ।
तदीयचरणारुणाम्बुजपराग-पुञ्जे कथं,
न मरणति सन्ततिर्भ्रमरभामिनी वोल्लसेत् ।।



# —: प्रार्थना :—

वादय वीणामयि जनसु! खदे !
व्यनुनादय हृदयं मम वरदे !!

[ १ ]

त्वं जनमानस—हंस — वासिनी,
त्वं कविहृत्प्रतिभा-विकासिनी,
त्वं विख्याता विधि-विलासिनी,
नर— सहृत्त्व — मृदु— करदे: ।

[ २ ]

पुस्तक — शस्तकरा — विराजसे,
शुक्लमाल्यवसनाऽत्र राजसे ।
सकल—चराचरमेव तव वशे,
विहस मनसि मम परदे: ।

[ ३ [

त्वं विद्या परमा विमुक्तिदा,
विषय-स्पर्शनतोऽसि भुक्तिदा ।
त्वं तस्मादसि सर्व–सर्वदा,
नतिमङ्गीकुरु जयदे !

[ ४ ]

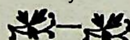
त्वं स्वाहा दिवि दीप्तिदायिनी
स्वधा त्वमसि पितृ-तृप्ति-पायिनी.
सिद्धिः सकला तेऽनुयायिनी
सुवस ! मनसि मम नयदे !

] ५ ]

तवापांगपातेन हि विबुधा
ननु भवन्ति लोकेऽत्र निरुपधाः ।
इति सुपरीक्षितमेवहि बहुधा,
वितर सुदृष्टिमभयदे ।

वादय वीणामयिजनसुखदे,
व्यनुनादय हृदयं मम वरदे !





# संक्षिप्त-सप्तशती

भूधरपतिकन्ये !

सुविमलदल-नवशतदल-पूजित-पदधन्ये !
भूधरपतिकन्ये !

[ १ ]

अरुणतरणि किरण सरणि गञ्जनरुचिपुञ्जे !
मृदुलहास-शशिविकास-भासिततमकुंजे !

[ २ ]

चन्दनवन-चलितपवन-लोलललितमाले !
दुष्टदमन-लब्धगमन-करगतकरवाले !

[ ३ ]

नष्टविधिभ-मधुकैटभ-नाशनिहितचित्ते !
जितसुरपुर-महिषासुर-निधनोद्यतवृत्ते !

[ ४ ]

प्राप्तसुपुर-सत्वरसुर-पूजितपदकञ्जे !

धूम्रनयन-शीघ्रनिधन-कारिणि धृतगुञ्जे !

[ ५ ]

पदकिसलय–भव्य–निलय–सिंहनिहतचन्डे!
दुष्टमुण्ड-चण्डमुण्ड-खण्डिनि ! चामुण्डे !

[ ६ ]

अशुभबीज –रक्तबीज –नाशिनि! हरवामे!
खलनिशुम्भ-सहितशुम्भ- दर्पदमनकामे !

[ ७ ]

कात्यायनि! दुष्टदमनि! सुरशंसितकृत्ये !
वरदायिनि! हरभामिनि! दृष्टि कुरु भृत्ये।।

भूधरपतिकन्ये!

सुविमलदल–नवशतदल–पूजितपदधन्ये !
भूधरपतिकन्ये !

—o—o—

# गणेश-गुणगीतिः

जय गणेश ! विघ्नेश ! विघ्नहर !
जय पाशाङ्कुशकर ! लम्बोदर !
जय गणेश ! विघ्नेश ! विघ्नहर !

[ १ ]

शरणागतस्य कुरु कल्याणं ।
त्वमसि विघ्नहा वदति पुराणम् ।
को जानाति न तव गरिमाणं ।
वीक्षेऽन्यं सर्वं पाषाणम् ॥

जयगणेश———

[ २ ]

त्वां विहाय गन्ताऽहं क्वस्या—
मिच्छा कर्तुं नान्यनमस्याम् ।
अगजाऽऽननं प्रफुल्लं त्वत्तो ।
गजाजिनोऽपि न किं मुन्मत्तो ॥

जयगणेश———

[ ३ ]

ऋद्धिस्सिद्धिर्वशे तवैव हि
वारण–शक्तस्तव तु कोऽपि न हि ।
वारणवदन ! वारणारूढो
भक्तस्ते न भवति मतिमूढो—
जयगणेश———

[ ४ ]

कृत्यं किमपि महद् वा न्यूनं
त्वां प्रणम्य क्रियते चेन्नूनम् ।
भवति सफलता तत्र सुनियता
सिद्धिस्तव हि करे यद्वितता ।।
जयगणेश———

[ ५ ]

गिरिजागिरिशलालितं बालं
गजवदनं सुदीप्त—शशिभालम् ।
वन्दे तुन्दिलमुरगसुमालं
रक्तवर्णमति नतगणपालम् ।।

जय गणेश ! विघ्नेश ! विघ्नहर !
जय पाशाङ्कुशकर ! लम्बोदर !

# महेशस्तुतिः

जय महेश ! जय नतजनभयहर !
जय शशिशेखर ! जय त्रिशूलकर !

[ १ ]

उमाकान्त ! कामान्तक ! जय जय
व्याघ्राजिनपरिधान ! मोदमय !
निरत ! भक्तपीडा—संहारे,
मुदित ! हिमालय—शृंगविहारे—

जय महेश ———

[ २ ]

व्यालमालया विलसित — कन्धर !
गरल — कालिमा—सुललित—गलधर !
वरवरदानोन्नत — दशकन्धर !
भुक्तिमुक्त्युभयदान — निरत ! हर !

जयमहेश———

[ ३ ]

प्रजपतु सदा नाम तव, रसना
भवतु मतिस्त्वामीक्ष्य वित्रसना ।
त्वयि जीवन–धारा सुश्वसना
भक्त्युद्रेक – मोदमद – हसना ॥
जय महेश————

सन्त्वीशा बहवोऽत्र भूतले
देवा दिक्पाला नभस्तले ।
त्वां विना न खलु कोऽपि महेशः
तेनाहं विनतोऽस्म्यधमेशः ॥
जय महेश————

[ ५ ]

जटाजूट—पुट—मित—गंगा—धर !
भव ! भवभय—बाधाहर ! शंकर !
सुराऽसुरार्चित ! विधिहर —किंकर ।
नौमि सदा सर्वेश ! परात्पर !

जय महेश! जय नतजनभयहर !
जय शशिशेखर! जय त्रिशूलकर !

—o—o—

# शान्ति-गीतिः

परा शान्ते ! देवता त्वम्
निखिल-विश्वस्यैकता त्वम्
परा शान्ते······

[ १ ]

क्रान्तिरपि भवति त्वदर्थम्
भ्रान्तिरपि भवति त्वदर्थं ।
श्रान्तिरपि भवति त्वदर्थं
ह्यमृत-ह्रद-विद्रुमलता त्वम्
परा शान्ते! ······

[ २ ]

त्वं दिवस–निर्माण – भूता
त्वं दिवस–निर्वाण–भूता ।
हृन्नभः–परिमाण – भूता
सकलताप-विरोधिता त्वम् ।।
परा शान्ते! ······

[ ३ ]

साधना साङ्गीतिकी त्वं
वासना जितमानसी त्वं
कामना ननु कस्य न त्वं ?
रम्यगत–रमणीयता त्वम् ॥
परा शान्ते! ......

[ ४ ]

श्रमिक-सज्जन-सुप्ति –भूता
त्रस्तमनसो गुप्ति-भूता ।
पीडितानां मुक्ति –भूता
प्राणिनां सत्प्रणयिता त्वम्॥
परा शान्ते! ......

[ ५ ]

कल्पना त्वं कविजनानां
जल्पना त्वं देशिकानाम् ।
व्यंजनाऽञ्जित–हृज्जनानां
ह्यनुजी ननु मनुजता त्वम् ॥
परा शान्ते! ......

[ ६ ]

जगदिदं शून्यं न चेत्त्वम्
ताप-साम्राज्यं न चेत्त्वम्
वैभवे तव किं नहि स्वम्
रङ्कहृन्निश्शङ्कता त्वम् ॥
परा शान्ते! ......

[ ७ ]

अस्युपासक – जनोपासा
दुःखिनामेका महाशा ।
त्वं न भव, जनिमन्निराशा
विषमता प्रसूतिर्नचेत्त्वम् ॥

परा शान्ते ! देवता त्वम्
निखिलविश्वस्यैकता त्वम् ॥
परा शान्ते ! ......

# राष्ट्र-प्रगति-गीतिः

भाति ननु राष्ट्र–ध्वजोऽयम् ।
रागतः स्वगुणत्रयं परिभावयन् पूतप्रजोऽयम्
भाति ननु राष्ट्रध्वजोऽयम् ।

[ १ ]

धन्यधन्यं तद्दिनं जातं यतो गणतन्त्र –राज्यम्
यद्बलादवलोकितं लोकैः प्रमोदाधिक्यमाज्यम् ।
खण्डितोऽभूद्यत्र भारतपारतन्त्र्यादम्य-पाशो
येन बद्धः सीदतिस्म न कोऽत्र निर्मुक्तौ गताशो—
भाति ननु…………

[ २ ]

गौरवं प्राप्तं पुनर्ननु रौरवादुत्थाय लोकै—
रन्धकारमधोनिरस्य धृतः प्रकाशस्त्यक्तशोकैः ।
व्रतमुपासीनो विकासस्याद्य सन्नद्धः समग्रो
दृश्यते देशः श्रमाश्रयणेन भूयः प्रोन्नताग्रो—
भाति ननु………

[ ३ ]

कौशिकी –तटबन्ध –योजनया प्रसन्ना भाति पूर्वा
पश्चिमाऽपि च "भाखड़ा"बन्धेन दिङ् ननु भात्यपूर्वा ।
कं न सुखगत्यत्र खलु रीहन्द–दामोदर–विकासो
यत्र भारत –शासनेन विधीयते स्तुत्यः प्रयासो–
भाति ननु.........

[ ४ ]

चालिता सहकारिताऽपि च कर्षकेष्वतिहर्षदात्री
ग्राम – जागरणाद्यतस्तिष्ठेन्न काप्यथ रिक्त–पात्री ।
लघु –कुटीरोद्योग – विद्योतन – विलग्नः शास्तृवर्गो
भौतिकीमपि सद्व्यवस्थितिमातनोति नवो हि सर्गो–
भाति ननु.........

[ ५ ]

देशसीम्नि कृतं दृढं यत्नात्सुपरिरक्षा–विधानं
सर्वथा परिरक्षितं हिममालिपार्वत्यं निधानम् ।
शत्रु – बुद्धि – विहीनता ह्यायाति यदि तत्र प्रगर्वा
सा कृता स्यादेव वीरैरस्मदीयैः खर्व – खर्वा
भाति ननु.........

[ ६ ]

दक्षिणाऽपि सुदक्षिणेव विलोक्यते परम – प्रसन्ना
"श्री दिलीप"–सुशासनेन यतो न काऽपि नता विपन्ना ।
प्रस्फुरन्ती भाति दण्डक – योजना बहुयोजनान्ता
पारिवारिक-सन्नियोजनतश्चकास्ति न काऽत्र कान्ता—
भाति ननु………

[ ७ ]

भारतं ननु भा-रतं क्रमशो भविष्यत्येव मन्ये,
नाऽत्र पदमाधातुमेकमपि प्रशक्तोऽस्त्येव मन्ये ।
भावना स्फुरिता सहास्तित्वस्य भारतवासि -लोके
पंचशीलमुपाश्रितः कथमापतिष्यति कोऽपि शोके—
भाति ननु राष्ट्रध्वजोऽयम्
रागतः स्वगुणत्रयं परिभावयन् पूतप्रजोऽयम्
भाति ननु………

———

# कालिदास-स्तुतिः

कालिदास ! नमो नमस्ते ।
स्तोतुमशक्तः शक्नुयादमृतोपमं सुभगं वचस्ते ।
कालिदास ! नमो नमस्ते ॥

[ १ ]

त्वद्यशो मन्ये घनीभूतं दधाति हिमालयत्वं
त्वद्यशो मन्ये द्रवीभूतं ततो गाङ्गत्वमाप्तम् ।
त्वद्यशो वियदुत्पतन्मन्ये गतं रजनीकरत्वं
यत्कणप्रकरो विकीर्णो भाति विभ्रत्तारकत्वम् ॥
कालिदास ! नमो........

[ २ ]

कः कथं कथयेन्न जीवस्यद्य संसारे खलु त्वं
किं मृतस्योदेति वागमृता कदापि कवे ! वद त्वम् ।
किं कदापि कुमार–सम्भव–वर्णना स्यात्तादृशत्वे ?
स्तन्यमथ सारस्वतं परिपीय तिष्ठसि निर्जरत्वे ॥
कालिदास........

[ ३ ]

काऽस्ति सा रसना, यया न स्तूयतेऽथ शकुन्तला ते ?
कुत्र मालविका विकासमुपैति मालतिकेव नो ते ?
उर्वशी विवशीकरोति न कं विलोकयितुं त्वदीया?
त्वामतः समुपागता धन्या न किं प्रणतिर्मदीया ॥

कालिदास.........

स्तोतुमथ कः शक्नुयादमृतोपमं सुभगं वचस्ते ।
कालिदास । नमो नमस्ते ।

———

# कालिदास-काव्य-स्तुतिः

[ १ ]

सुरस-कविता वल्लरी ते,
सुरस—कविता वल्लरी ते,
कालिदास ! न संशयो मे सुरस—कविता वल्लरी ते ।

शक्ति—बीजसमुद्गता प्रज्ञांकुरा क्रमशो विशाला,
भव्यभव्यतवाऽऽननाऽऽविल-विलसदम्बु—समालवाला ।
कीर्तिपुष्पवती चकास्ति न कुत्र यत्र जनाधिवासः
कविकुलस्य गुरोस्तवाद्य विलोक्यते स्तुत्यः प्रयासः ॥
सुरस-कविता........

[ २ ]

रूस-जर्मन-चीन-जापानेषु धन्या गीयते या
नन्दनेऽपि महीयसी सुमनोभिरद्य निपीयते या
तत्तुलामधिरोढुमत्र भवेत्समर्था हन्त कान्या
स्वस्सुधापि सुधासमा जनकर्णयोर्न ततोऽतिमान्या ।
सुरस-कविता........

सुरस-कविता वल्लरी ते

कालिदास ! न संशयो मे सुरस-कविता वल्लरी ते

---

# जय कालिदास!

जय कालिदास ! जय कालिदास !
जय कविता—नववनिता—विलास !
जय कालिदास ! जय कालिदास !

जय भारत-भारत-भव्य भाल !
जय सारस्वत—पङ्कज-मराल !
स्व-यशोभिः श्वेती-कृत— दिगन्त !
सुमनस्सुमनोहर-नव-वसन्त !

जय कालिदास ! जय कालिदास !
जय कविता—नववनिता— विलास !
जय कालिदास ! जय कालिदास !

---

# गिरिकल्लोलिनी

कुत्र याति तरंगिणीयम् ?
कुत्र याति तरंगिणीयम् ?

[ १ ]

तुंग गिरिशिखरात्पतन्ती
प्रास्तरं खण्डं हरन्ती।
सूर—शशि—बिम्बं वहन्ती
या विभात्यति-वेगिनीयम्
कुत्र याति तरंगिणीयम् ?
........................ ?

[ २ ]

जलकणान् हीरक -कणानिव
प्रोच्छलन्मौक्तिक—गणानिव।
किरति जर्ज्जरतर-शणानिव
सर्वथा प्रोन्मादिनीयम् ॥
कुत्र याति तरंगिणीयम् ?
.............................?

[ ३ ]

सुशिथिलीकृत - तूलकाऽऽभा
वोच्छलत्सित-सैकताऽऽभा ।
पथि बहूपल—खण्ड-लाभा
भाति ननु कल्लोलिनीयम्
कुत्र याति तरंगिणीयम् ?
कुत्र याति तरंगिणीयम् ?

———

# नक्षत्राणि

ज्वालिता दीपावलीयम् ?
किं रजन्या ननु मुदितया
ज्वालिता दीपावलीयम् ?

[ १ ]

व्रजति पति—परिभाव के नलिनीपतौ चण्डप्रतापे
दूरतरदेशं सवेगं जलजचेतसि लब्धतापे ।
कैरविण्यामपि भगिन्यामाप्तमोदायामभीक्ष्णं
यामनेके कल्पयन्ति प्रकृति— गल—मुक्तावलीयम् ॥
ज्वालिता दीपावलीयम् ?
......................?

[ २ ]

विद्युतस्त्रसरेणवो नीलाऽऽतते गगने विकीर्णा,
वियदमर—तटिनी—तटे सिकताकणा ननु रजत—वर्णाः ।
कल्पयन्ति मनीषिणोऽन्ये द्युस्फुरत्खद्योत — वृन्द—
श्चन्द्रपथि दिव्याङ्गनाजन-करगलल्लाजाऽऽवलीयम् ॥
ज्वालिता दीपावलीयम् ?
किं रजन्या ननु मुदितया
ज्वालिता दीपावलीयम् ?

# सूर्योदय:

ज्वालितोऽयं भुवनदीप:
किं प्रकृत्या जनजनन्या ?

यत्प्रकाश — पराहत: प्राप्तो विनाशममान्धकारो
यत्र शलभत्वं व्रजन्निव लक्ष्यते नक्षत्रहार: ।
प्रोत्पलानि विलोचनानि, भजन्ति साफ़ल्यं स्वविषये
पश्य, 'पश्य, विलोक्यते भिन्नो रसाला दुच्चनीपो
ज्वालितोऽयं भुवनदीप:
.......................?

सर्वदिक्क्-सुदिव्य —दीप्तितया ऽ प्रसूततलान्धन्कार—
स्तैलवर्त्यनपेक्षितत्व — वशादवान्त-विकार-भार: ।
दिग्वधू —भाल— स्फुरद्वरभूषण—भ्रमद स्सुचेतसि
पूर्व—देशादपरदेशमपि व्रजन्ननिला ऽ प्रतीपो—

ज्वालितोऽयं भुवनदीप:
किं प्रकृत्या जनजनन्या
ज्वालितोऽयं भुवनदीप: ?

———

# प्रतिपच्चन्द्रः

उद्गतेयं सोमवल्ली,
अस्तगिरिश्रृंगेनु किं पुनरुद्गतेयं सोववल्ली ?

[ १ ]

गगनकाननगे तमःपुञ्जे निकुञ्जे या निलीना
प्रत्यहं वृद्धिं गता ननु लोक्यते लोकैर्नवीना ।
पूर्णपर्वणि पूर्णतामथ या कलाभिः षोडशीभिः
प्राप्य मानसमागता प्रतिभाति यद्वदमन्द-मल्ली ॥

उद्गतेऽयं सोमवल्ली
....................?

[ २ ]

यत्कलामादाय हव्यत्वेन कालः कोऽपि होता
प्रतिदिनं होमं विधत्ते प्रलय-फलबल-लब्धचेताः ।
याममृत—दिग्धा मिमा मादाय दर्शे सूर्यवह्नौ
साधयति पूर्णाहुतिं पुनरुद्गता किं सैव वल्ली ॥

उद्गतेयं सोमवल्ली
..................?

# वन्याष्टकम्

हा समायाताऽत्र हाहाकारिणी वन्या जघन्या
रोदितिस्म पुरीयमत्यन्तं समुद्विग्नेव कन्या,

हा समायाताऽत्र.....................

[ १ ]

क्षुद्रनदिका गोमती सागर—कलेवरमादधाना
गर्जतिस्म वृहत्तरंग—तुरंग—चाञ्चल्याऽभिमाना ।
घातयन्ती सर्वतः प्रासादमालामति—विशालां
पातयन्ती प्रोन्नतोन्नत—पादपालीमतिविशालाम्

हा समायाताऽत्र..............

राजमार्गाणामुपरि चलतिस्म नन्वमितः प्रवाहः
स्थातुमथ शक्तोऽभवन्नहि तत्र गज-रथ-तुरगवाहः ।
नौकयाऽपि कयापि यानं दुष्करं वेगाधिकत्वा
दायस—प्लवगतजनप्राणा गता इव भीतिमत्वात्।।


हा समायाताऽत्र...............

[ ३ ]

भग्नशेष—गृहोर्ध्वभाग—समाश्रया आबालवृद्धाः
क्षुत्पिपासाव्याकुला आसन् महान्तो धनसमृद्धाः ।
पाहि पाहीत्यालपन्तो नास्तिका अपि भुवनतातं
पूर्वदुष्कृत—फलतया—प्रवितीर्ण-निरुपमवज्रपातम् ॥

हा समाय ताऽत्र............

[ ४ ]

विश्वविद्यालय-महाकार्यालये जलमध्यवर्तिनि—
वर्तमानजनावनाय शशाक कोऽपि न निकटवर्तिनि ।
छात्रसंघगृहावरुद्ध—जनावनं कठिनं प्रयातम्
जलाप्लावित-राजमार्गात् प्रस्खलद्भिरितः प्रयातम्

हा समायाताऽत्र हा हा............

[ ५ ]

भग्न-वटलर-बन्धमार्ग-विसारि-तोय-विदारिताङ्गा
हा बभूव पुरी नरीनृत्यत्कबन्ध-शताऽऽवृताङ्गा ।
भव्य-हजरतगंज—पंकजलोचनाऽपि जले निमग्ना
काष्ठ-सुप्लव-मार्गविप्लवतो गतिः सकलस्य भग्ना

हा समायाताऽत्र हाहा............

[ ६ ]

प्रवहदुत्तर—पूर्वमथ जलमाविलं वेगाधिकत्वा—
दाइ०टी० कालेज—वाप्पग-मार्गयोर्मध्ये चलत्वात् ।
वादसाहपुरं प्रविश्य मिलज्जलै र्यम्या-समेतै—
राकुलं चक्रे महानगरं भयप्रदतां गतै स्तैः ।।

हा समायाताऽत्र…………

[ ७ ]

प्रोच्चफैजावादमार्गसमाश्रया मनुजाः कथञ्चित्
किञ्च सीतापुरगमार्ग-समाश्रया दीनास्तु केचित् ।
उच्च डालीगंज-वाष्पग-विश्रमस्थाने निषण्णा
वन्यथाऽधन्यीकृता दुरदृष्टदष्टा ननु विषण्णाः ।।

हा समायाताऽत्र…………

[ ८ ]

'हेलिकोफ्टर''पातितं खाद्यं जले पतितं कदाचित्
वीक्ष्य नष्टाशा जना नौकां व्रजन्तीमीक्ष्य केचित् ।
पुनर्लब्धासव इवासन् हन्त ते वसनैर्विहीना—
निर्जले मीना इवात्यन्तं जले हा दीनदीनाः ।।

हा समायाताऽत्र…………



———

# अभियान-गीतिः

व्रज त्वमद्य सत्वरं चल त्वमद्य सत्वरम् ।
धीर ! वीर-सैनिक ! व्रज त्वमद्य सत्वरम् ।
व्रज त्वमद्य सत्वरम् ।.........

( १ )

करोल्लसद् — भुशुण्डिका—घनध्वनत्सुनालिका—
समुच्छलच्छिखिच्छटा—कृताट्टहास ! सत्वरम् ।
व्रज त्वमद्य सत्वरम्........

( २ )

मातृभूमिमौलि—शैल—लुञ्चकाऽति नीच ! चीन !
दुष्ट ! मुष्ट—भारतीय—भूमि—भाग ! पाप—पीन !
नाद्य कोऽपि रक्षक स्तवाद्य विश्वमण्डले
प्रहार एष मे दढस्तवाऽति—पीवरे गले
इतिब्रुवँल्लसत्प्रभ श्चल त्वमद्य सत्वरम्
धीर वीर-सैनिक........

( ३ )

पराभिमन्यवोऽभिमन्यवो विभान्ति बालका
उदग्रहेतिभृत्करा इमा विभान्ति बालिकाः ।
समोऽस्ति तत्परो नरो न कोऽपि युद्ध—कातरो
निरीक्ष्य कालमागतं विदीर्णा—हृद्भवेत्परो—
व्रज त्वमद्य सत्वरम्………
वीर वीर सैनिक !………

---

## कर्षक-हृदयम्

( १ )

भारत—मातुः सत्य—सेवका वयमेवहि विख्याता
मृदः स्वर्णताऽऽनयने नूनं किं न वयं सुख्याताः ।
कर्षका वयम्………

( २ )

विश्वम्भर-विश्वम्भरताया मप्यस्मत्साहाय्यम् ।
अस्मच्छ्रममन्तरा न सम्भव्यन्नं सत्यं प्राज्यम् ॥
कर्षका वयम्………

( ३ )

वयमुत्पाद्य खाद्य–सामग्री मखिला मखिलांस्तनुमः ।
कमनीयां भारतवसुन्धरा मन्वर्थां तां च नुमः ॥
कर्षका वयम्………

( ४ )

देवानामपि भोजयितारो वयमेवहि किं न स्मः ।
कुतो हव्यनिष्पत्ति र्यदिचेत् किमपि वयं नो कुर्मः ॥
कर्षका वयम्………

तद्युत्तरदायित्वं कीदृक् शिरसि विद्यतेऽस्माकम् ।
तदनुरूपमेव हि कर्त्तव्यं सम्मिलित्वा साकम् ।
कर्षका वयं हर्षका………

( ६ )

देशशत्रुदलनं सुदुर्घटं यदि न वयं सन्नद्धाः ।
कर्तुं ततः कर्म सम्बद्धाः स्याम वयं समवहिताः ॥

कार्षका वयम्
हर्षका वयम् ॥

---

# बालिकोत्साहः

स्वदेश— रक्षणोऽति तत्परा वयं न संशयः
स्वपक्ष—रक्षणे सुतत्परा वयं न संशयः ।

( १ )

कोमलेषु कोमलानि नो मनांसि निश्चितम्
वज्निष्ठुराणि किन्तु दारुणे विनिश्चितम् ।
दुष्ट-शत्रुदेश-नाशनाय भद्रकालिका
वयं न कोमलाः कलेश-कौमुदीव बालिकाः ॥

स्वदेश..........

( २ )

शरीरमेतदस्मदीय — मेतदीय — भौतिकात्
कणोच्चयाद्विनिर्मितं मुनिः कणाद आह यत् ।
विचार्य तत् शरीरमप्यदेयतां न चार्हति
प्रदीयतां ततो यदस्ति देश—रक्षणाय तत् ॥

स्वदेश..........

( ३ )

देशभूमितो हि निर्गतं हिरण्यमस्ति यत्
वसुन्धरा वसुन्धरैव नास्ति कापि तत्समा ।

ततोऽपि दीयतां तदस्ति यद्धनं गृहे स्थितम्
मातृभूमि — मर्दि—शत्रु — देश—भक्षणानुगम् ॥
स्वदेश............

( ४ )

वीरसैनिकाः स्वशौर्य–वीर्य—गर्व—शालिनो—
रणाध्वरे शिरः स्वकं समर्प्य पुण्यमालिनः ।
विभिद्य सूर्यमण्डलं परं पदं व्रजन्ति ये
तदर्चना विधीयतां यदस्ति तत् प्रदीयताम् ॥
स्वदेश रक्षणे...........

———

# रक्तप्रार्थना

दीयतां प्रदीयताम् ।
रक्तमाशु दीयताम् ॥
दीयतां प्रदीयताम् ।

[ १ ]

भवत्कृते रणाङ्गणे निपातयन्ति शोणितं
परैः पराहता हि ये भवत्सुबन्धुबान्धवाः ।
स्वरक्तविन्दुदानतः तदीयरक्षणं न किम्
भवत्सुकृत्यमित्यवेत्य रक्तमाशु दीयताम् ॥

दीयतां प्रदीयताम्
..................?

[ २ ]

अये सुखेन वारिताति — शीतभीतयो जनाः !
सुमिष्ट — भोजिनो गृहे, गृहीत—नूत्नयोजनाः ।
विचार्यतां विचार्यतां स्वकृत्य—मद्य सङ्कटे
स्वरक्षकस्य रक्षणाय रक्तमाशु दीयताम् ॥

दीयतां प्रदीयताम्
रक्तमाशु दीयताम् ॥

[ ३ ]

दृश्यतामिमे समुद्यता व्रजन्ति बालका
इमाः प्रफुल्लिताऽऽननाः सुकोमलाश्च बालिकाः ।
सदङ्गना इमास्तथा ऽ वधूय नित्य—कृत्यकम्
स्वरक्तदानगास्ततस्त्वयाप्यये ! प्रदीयताम् ॥
दीयतां प्रदीयताम्
रक्तमाशु दीयताम् ॥

---

# स्वाधीनता-प्रशस्तिः

स्वाधीनमिदं भारतवर्षं
वद कस्य न हृदि जनयति हर्षम् ।
स्वाधीनमिदं भारतवर्षम् ।

( १ )

दिशि दिशि रसाल-राजी-ललितं
सुमनोहर——सुमनश्शत——कलितम् ।
गंगा—यमुनाऽमल — जल—मिलितं
स्वस्थिति—लाभाय पुनश्चलितम् ॥
स्वाधीनमिदं…………
……………………

( २ )

श्रीरामकृष्णजननी जननी,
परपददलिताऽऽभूदियमवनी ।
नृप—विक्रम — हर्षाऽशोक—वनी
स्वाधीना जाता जनावनी ॥
स्वाधीनमिदं…………
……………………

( ३ )

शङ्कर — रामानुज — बुद्ध — विभं
व्यास—प्राचेतस — गौतम — भं।
ऋषि — कपिल— कणाद— स्फुरत्प्रभं
तुलसी — कबीर—गान्धी — विभवम् ॥
स्वाधीनमिदम्…………
……………………

( ४ )

यस्योद्धृति — लक्ष्यवती जनता
नव — मोहन — नेतृ—पथ— प्रचिता।
स्वातन्त्र्य — समुन्नत — केतुनता
प्रबभूव द्रुतं सफलेव लता॥
स्वाधीनमिदं भारतवर्षम्
……………………

( ५ )

जलनाली — लम्भित — बह्वन्नं
ननु वासस्सौलभ्याऽऽपन्नम्।

सुमहौषध — ताडित — रोगर्क्षं
सम्पूर्णानन्दोद्गम — शिक्षम् ॥
स्वाधीनमिदं........
..................

( ६ )

समुदेतु भारती — परम्परा
गीता—गुरु—गीता ऋतम्भरा ।
सुखिनः स्युर्यया समे हि जनाः
मा तिष्ठतु कोऽपि जनो विमनाः ॥
स्वाधीनमिदं...........
.........................

( ७ )

स्वातन्त्र्यमिदं बहु — बलिकलितं
स्थिरमथ तावन्न भवेल्ललितम् ।
कर्त्तव्य — परायणता मनुजे
नायाति समस्ते भारतजे ॥
स्वाधीनमिदं भारतवर्षम्
...........................

———

# रहस्य-रहस्यम्

[ १ ]

प्रसरतु सर्वत्रैव भारते भाषा हिन्दुस्तानी,
इति सुयत्नपरतामनुगच्छति हैन्दवजन्यभिमानी।
योजना नेतुरियं महती
ज्ञायते नीतिरियं बृहती॥

[ २ ]

हिंदु-यवनयो रैक्यमितः स्यादिति जल्पति वरनेता।
स्वातन्त्र्यं द्रुतमेव गमिष्यति, देशो वदति सुचेताः॥
दुराशा किं नेयं प्रबला
ज्ञातिरिह रोदिति नन्वबला।

[ ३ ]

सम्मेलनस्य साभापत्यं पतितं नन्वस्थाने।
परिचिनोति रत्नं नहि जनता ध्रुवमित्येव हि जाने॥
साधु वा संजातं परमं
पतित्वं कथमपुंसि सुभगम्।

( ४ )

रतिमहिंसया कुरुते नित्यं
यः कलियुगी — महात्मा !
तत्पुण्येन विजेतु मीहते
वृटिशमसौ परमात्मा ॥
कीदृशं ब्रह्मचर्यमपरम्
सन्तताऽऽहिंसा—सुरत— करम् ।

( ५ )

पण्डित इव पण्डित — पदमपि किं कामुकत्वमधिगच्छति ।
पुंविशेषणीभूय पुनर्ललनाविशेष्यतां गच्छति ।
जयश्रीरस्ति हि तस्य करे
भूयसी भक्तिस्तस्यहरे ॥

———

# प्राकृतं-रहस्यम्

( १ )

गगनमधि हसन्नुपैति चन्द्रः
कर—निकरै रचलाञ्चलं विगृह्णन् ।
त्रुटिति हृदय—हारि—रम्य—हारे
सभ मभवन्नु नभो विकीर्णरत्नैः ॥

( २ )

अत्र पल मवलोकयत्यजस्रं
ननु रजनी चतुरा सखी रतिज्ञा ।
अकृत खलु शशी श्रमाम्बुजालै
र्धवलतरैः समलङ्कृतां धरित्रीम् ॥

( ३ )

प्रकृति—चरित—गोपनाय दूती
गगग—पथ — प्रविकीर्ण — मौक्तिकानि ।
झटिति ननु चिनोति हन्त किन्तु
श्रमजल—विन्दु—गणं स्वादि सर्वम् ॥

( ४ )

परिहर्रति च निष्प्रभे सुधांशौ
करनिकरं ननु नीरसत्वमाप्ते ।
सपदि समवलोकिता धरित्री
मृदुगतिभिर्मलय — प्रभात—वातैः ॥

( ५ )

कुपितकपिकपोल — रक्त-रक्ते
दिवसकरावुदयाचला ऽ धिरुढ़े ।
अपतदसित — वारुणी — समुद्रे
चपलगति मृ॑गलाञ्छनोऽतिभीतः ॥

( ६ )

तव चरण—सहस्र — ताड़िताऽपि
प्रकृतिरियं विकृतिं न या प्रयाता ।
अहमिव तु न ते स्वकीययैवं
दिवस—पति र्ननु बोधितो नलिन्या ॥

( ७ )

रविरुपगमितः प्रशान्तभाव—

मवहृदसीम—समुज्वला स्वकान्तिम् ।

सुसमयमतिवाह्य गन्तु मुत्कोऽ
भवदमलांशुक मावहन् विदेशम् ॥

( ८ )

व्रजति दिनमणौ विहंगमाला
विरह—विदूनतमा चिरं चुकूज ।
अलिरविगणयन् पराग—शय्यां
स्वन—निकरै रथ रोदितुं प्रवृत्तः ॥

( ९ )

सपदि सजल—लोचने निमील्या—
भवदथ पङ्कजिनी विमूर्च्छितेयम् ।
प्रकृतिरपि शुचं प्रदर्शयन्ती
ननु कृतकं स्तिमिता गतान्धभावम् ॥

( १० )

स्वपरपति — विवेचनेन हीना
गतमनुमाय रविं पुनर्धरित्री ।
शशिनि समभवन्महानुरागा
रविकृत—दुर्गति-विस्मृतिं श्रयन्ती ॥
गगनमधि हसन्नुपैति चन्द्रः

# स्वातन्त्र्य-प्राप्तिः

( १ )

दुश्शासनात्तवसना श्वसनान् कथञ्चि—
द्दासीकृताऽपि दधती शुभ—सानुरागा ।
वर्षं सहस्रमतिवाह्य मुदा सहासा,
लोकैरलोकि सफला ननु भारती भूः ॥

( २ )

धन्या तिथिः सुरुचिरा ननु धन्यधन्यो
वारः स हार इव हारित–चित्तवृत्तिः ।
यत्राभवद्दलित — दुर्द्दल— दास्य— पाशा
हासान्विताऽत्र भवती मम भारती भूः ॥

( ३ )

कुशासनं न्यक्कृतिभिः समर्च्य
स्वशासनाऽऽसीन — पदा विभाति ।
न कस्य चित्ते प्रमदं किरन्ती
दुःखं हरन्ती मम भारती भूः ॥

( ४ )

धन्यास्ते नहि केवलं सुकृतिनः स्वातन्त्र्य केतोरधः
तिष्ठद्भिर्ननु यैं र्वलि वितरितः प्राणः सहासं परम् ।
धन्यौ तौ पितरौ यदात्मजनुषां देहात् क्षरद्भि र्भृशं
रक्तैं स्तृप्तिमुपागता ननु गता भूताः सुभूमेरितः ।।

( ५ )

जायन्तां जलनालिका दिशि दिशि प्राचुर्यतोऽन्नप्रदाः
लोका स्सन्तु च नीरुज स्सुमतयो हृष्टा स्सुपुष्टा स्तथा ।
शिक्षामप्य विशुद्धबोधजननीं चञ्चच्चतुर्वर्गदां
पूर्णानन्दमया श्च शुभ्रगतयः स्वाधीनदेशेऽधुना ।।

———

# कविसमुद्बोधनम्

( १ )

मधुमय — नवनीत—भव्य—काव्य—
स्नुतरस—पूरित—मानसाः कवीन्द्राः !
हृदमल—कमलस्थ—देव — देवी—
चरण—नख—क्षति—नष्ट—दुष्टतन्द्राः !

( २ )

नियति— नियम — शून्य — मोदमात्र—
प्रद—निजतन्त्र—रसाढ्य—कर्म—योगात् ।
कविषु ननु भवत्सु सत्सु नैव—
प्रभवति संशयितं नवं विधित्वम् ।।

( ३ )

करबदरनिभं जगत्प्रपश्य—
द्विकच—तृतीय—विलोचनं दधनाः ।
इह ननु विलसन्ति यद्भवन्तः
स्फुटमिव भाति कवे नवं शिवत्वम् ।।

( ४ )

भवदति—ललितो पदेश—वाक्य—
श्रुतिकृत— निश्चय—लब्ध— सुव्यवस्था ।
विलसति जनता स्थिरा स्वकृत्ये
किमु भवतां न ततः स्फुटं विधुत्वम् ॥

( ५ )

कविकुल — गुरु – कालिदास — मुख्यैः
कवि—निवहै विहिता न किं भवद्भिः ।
शकहति मुपपाद्य देश—रक्षा
नृपवर–विक्रम — विक्रमाग्नि— वार्तैः ॥

( ६ )

निज—घटक—कवीन्द्र—वाण — वाणी—
निवह — विवर्धित —हर्षभूप— हर्षैः ।
किमथ न कविभिर्भवद्भिरेव
प्रतिगत—हूण—हृतिः कृता महद्भिः ॥

( ७ )

व्यवहिततर — विप्रकृष्ट — वस्त्व—
प्यथ विषयीक्रियते यतो भवद्भिः ।

श्रुतिगत—कवि — कल्पनां दधानै—
र्विमतिरतो भवतां नहीश्वरत्वे ॥

( ८ )

निज विशद—यशः— प्रकाशिताऽऽशा—
मुखवलयैः कविकर्म—दत्त—चित्तैः ।
किमु नहि विनिवेदितं भवद्भिः
कवि-सुयशः कथमाः शशी शशी स्यात् ॥

( ९ )

प्रकृतिरति — जड़ा न चेतनेयं
न खलु जडः पुरुषस्तु चित्स्वरूपः ।
इति निगद — विरोध — बुद्धि—बाधो
ननु जनितः कविभिर्न किं भवद्भिः ॥

( १० )

परतर — भवभाव—भूति — पूताऽ
चपल—हृदुत्पल — जीव— भृंग—गीतैः ।
अभिसुखतम——देव—चन्द्र —चूडैः
किमु कविभि र्न वशीकृता विमुक्तिः ॥

( ११ )

कविवर — भवभूति — भारवीणा
मपिच—सुबन्धु— मयूर — शेखराणाम् ।
प्रतिकृतय इवावभान्ति यूयं
भरत—भुवो मणि—नूपुरायमाणाः ॥

( १२ )

अविरल—चल—देश—काल—पात्र—
प्रभृति—विचिन्तन—पण्डितै भंवद्भिः ।
स्ववचन — रचना तथा विधेया
भवति यथा निज—संस्कृतिः सुरक्षा ॥

( १३ )

बहुवलिकलिता — स्वतन्त्रतेयं
ननु ललिता चलिता भवेद्यथा नो ।
अवहित — हृदयैः स्वकीय — काव्यं
परतर—संस्कृति—पोषकं विधेयम् ।

( १४ )

कविभिरथ विशुद्ध—बुद्धिमद्भि—
र्गतसमये वरमन्त्रिता गृहीता ।

प्रभवितुमधुना न किं समर्थाः
स्युरिह यदि प्रतिभान्विताहि ते स्युः ॥

( १५ )

ये यूयं कवयः स्फुरत्सगुण—सालङ्कार—निर्दोषवा—
गर्थोद्गुम्फनत श्चमत्कृत—सहृत्स्वान्ता महामानवाः ।
तेषां देशदशावशीकृतहृदां प्राक्पुण्य—लब्धात्मनां
विद्वद्वर्षेऽ विवर्षि, दर्शितफलं सम्मेलनं जायताम् ॥

———

# भारत-महिमा

( १ )

यथा—समय मागतः प्रकृति—कोमलाङ्गीमिमा—
मशोककुसुमोद्गमः कथयतीव लोकानसौ ।
फलानलस—चत्वर—प्रसृतशाख—वेद — द्रुम—
प्रवृद्ध—बुधदर्शनं किमु न भा—रतं भारतम् ॥

( २ )

रसाल—मृदुमञ्जरीं नवपराग—भारालसा—
मयं स्वनति—चालयन् मधुरगन्धवाहो नु किम् ।
प्रभिन्न—कमलोदरेऽनुगतया मिलिन्द्या समं
पिवन् मधु वदत्यलिः प्रवरभा—रतं भारतम् ॥

( ३ )

श्रीमन्मोहन—लोकमान्य — तिलकालङ्कार—झंकारितं
यद्गोविन्द—कृपा—जवाहर—महदाजेन्द्र— चन्द्रोज्ज्वलम्
विद्वद्वृन्द—पदारविन्द — विलसच्छ्रीमत्कवीन्द्रान्वितं
पूर्णानन्द—सुशिक्षणैक—निलयं तन्निस्तुलं भारतम् ॥

---

# गीर्वाण-वाग्गौरवम्

( १ )

याऽऽसीद्भारवि—मानसे ऽनुदिवसं स्नात्वा विशुद्धाऽऽकृति
र्यस्याः श्रीभवभूति—भूतिभिरभू न्नो जातु चिन्ता हृदि ।
या भासादिकवेः कराम्बुज—दलैः सम्पूजिता ऽनुक्षणं
श्रीहर्षं समवाप्य हर्षमभजद्वीणां वहन्ती करे ॥

( २ )

सा पद्मासन—सुन्दरी भगवती गीर्वाणवाणी पराऽऽ
कांक्षाऽऽसक्तिमती ससग्रमनुजे प्रोद्बोध मातन्वती ।
राजद्योग्यतया फलं वितनुते नात्रैव, देहे गते
सूते याऽनुपमं फलं जगति सा केनोपमेया बुधैः ।

---

# काशिकराजकीय संस्कृतमहाविद्यालयप्रशस्तिः

( १ )

यो वाणीश—सयाश्रय स्तदनु गंगानाथ—भूत्युज्ज्वलो
गोपीनाथ—सनाथतामुपगतो विद्यलया ऽधीश्वरः ।
सोऽयं मङ्गलदेव—मङ्गलकराम्भोजाश्रितः साम्प्रतं
भ्राजत्कीर्तिपताकया निरुपमां धत्ते श्रियं कामपि ॥

( २ )

पूर्वं बालसरस्वती—विलसितो दामोदरै रादृतो
यो गङ्गाधर—भास्वरः समभवत् कैलाशचन्द्रोज्ज्वलः ।
श्रीधामचरणै—रखर्व—धिषणै र्विद्यालयेन्द्रः श्रितः
शाल—ग्रामवदर्चनीय—विबुधै रद्याप्यसौ द्योतते ॥

———

# चित्तौड़दुर्गः

( १ )

वाप्पा — रावल् — राणकुम्भातिवीर—
सांगा—गोरा—बादलाद्यान् प्रवीरान् ।
स्वातन्त्र्यस्योपासकान् स्मारयन्नः
स्वाधीनोऽयं भाति चित्तौड़—दुर्गः ॥

( २ )

कर्णावत्या यत्र वीरत्व मुग्रं
मीरायाश्चोद्भासिनी कृष्णभक्तिः ।
पद्मिन्याश्चात्युज्ज्वलं वै सतीत्व—
मासीत् सोऽयं भाति चित्तौड़दुर्गः ॥

( ३ )

ज्वालामालां वक्षसाऽऽलिङ्ग्य यत्र
पातिव्रत्यं रक्षयाञ्चक्रुरार्याः ।
सीमन्तिन्यो गौरवं स्वं वहन्त्यः
सोऽयं स्तुत्यो भाति चित्तौड़दुर्गः ॥

( ४ )

यस्य प्रोद्यत्प्रताप-प्रतपन—तपन—प्राप्त—भीतिप्रकम्पा
क्वं पातारं व्रजामीत्यगमदथ न वै निश्चियं मौगली श्रीः।
त्वं भल्लोल्लासिहस्तं जितपवन — चलच्चेतकाश्वाधिरूढं
प्रौढं राणाप्रतापं स्मृतिमुपगमयन् भाति चित्तौड़—दुर्गः॥

———

## निर्झरिणी

तुङ्गाद्गिरिशिखरादियं प्रपतन्ती ननु याति।
निर्झरिणी, निहतावनी—वितत—पिपासा भाति।

———

## सरसी

राजीव-सुनयने! खगकुल—शयने! वनचरगण-सुखदायिनि!
हृदये तटजातं वृक्षव्रातं दधती शोभाऽऽधायिनि।

स्वच्छाम्भोहासिनि ! निर्जनवासिनि ! कृतरजनीपतिमीने !
वद सरसि ! न हृत्ते रुजमथ धत्से चातक-पोते दीने ? ।।

---

## लता—सौन्दर्यम्

विततालि—लतेयं गायति गेयं
पुष्पचयेन मनोहरति ।
पवनेन विलोला लघुखग—दोला
पश्य सखे ! सुभगं चलति ।।

---

## कर्तव्य—निष्ठा

गमनेन जनो नहि खेदमेति ।
नालस्यमस्य हृदयं समेति ।
कर्तव्यं यदि साम्मुख्य मेति
बज्रादपि नासौ ननु बिभेति ।।

# गंगा—गरिमा

शापं विधे रुपेत्य स्वर्गसदनान्निपतन्ती
समागता शिवमौलिमिन्दु —शकलेन हसन्ती!
हिमगिरि—शिखरं शुभ्रमागता देवी गंगा
पतिमाप्तुं व्रजतीव रिंगदतितुंगतरंगा ।।
नृपति-भगीरथ—तीव्रतर — तपो द्रवत्वमिवागतम् ।
यत्सम्पर्क — भयाज्जगत्पापेन प्रपलायितम् ।।

———

# वृक्ष-वितति:

लंकितानुगतोऽयं वृक्षो योऽयं शाखाबाहुभिरूर्ध्वंतत:
खचरगह—विग्रह मिन्दुपरिग्रहमास्पृशतीव नगोपगगत: ।
निम्नाभिमुख: सन् पुष्पैर्विहसन् वीक्ष्य जलेऽत्रप्रतिफलितम्
तत्तारकचक्रं वलितो वक्रं विनतो भातीत्यति—ललितम्।।

———

## चन्द्रोदयः

औदयनग—शिखरोपरि प्रोदितचन्द्रो भाति ।
अदरदरीतो निर्गतः सिंहशिशु र्ननु याति ॥
सिंह—शिशु र्ननु याति गगन—कानन मति—धीरो
दीर्णः करतो येन तमोवारण — वरवीरः ।
तच्छ्मतो विच्छिद्य मौक्तिकै र्मार्गे प्रसृतं
यै स्तेषां खलु नाम तारका इति प्रचलितम् ।

———

## कन्दुकः

अभिनव — पङ्कज — शोभि—
तन्वीकरतः प्रोत्पतन् ।
आकाशे प्रविभाति
हंस इवाऽयं कन्दुकः ॥

———

## रजनी

चन्द्रोदय—सुमुदित—कुमुदा
तीव्रताप—नाशिनी सदा ।
पवन—सुगन्धित— सकलवनी
न हरति कं सुजनं रजनी ?

---

## रत्नाकरः

रत्नाकर ! वीचिचयैर्ललितो द्विजपतिं राजसे ननु मदयन्
उत्सृज्य वाष्पराशिं विततं घनघनमालामप्यसि जनयन् ।
हिमगिरि रन्यद्वा यज्जीवन मिह जगति भाति तत् त्वकणिका
त्वत्कुहरे शेते शेषोऽसौ यच्छिरसीलेयं मृत्कणिका ॥

---

## मार्ग—कूपः

कस्येतो व्रजतः कुरुषे नहि
जीवन—दानं पथि स्थितः ।
त्वय्येवाक्षिप दोषधजातं
किमितो धन्वन्तरि गंतः ..

---

## देवदेवः

त्वं देवदेवोऽसि जगदीप ! तजोऽसि
नाशं हि यन्नैति व्याप्तिं भजन्चैति ।
कालं सृजन् भासि नालम्बनो यासि
सर्वं जनं पासि त्वत्तो जगद्धासि ॥

---

# जलधरः

[ १ ]

जय जय जय हलधरनुत जलधर !
जय सकलवानवन मधुवनधर !
जय शुष्कसरसता — सम्पादक !
जय जनसुखकर—डक्का—वादक !

[ २ ]

व्याप्ते त्वयि नभसि मयूरोऽयं
नृत्यति तरंगिणी—पूरोऽयम् ।
त्वयि वर्षति, चलति लसत्फेनो
धौतं प्रभवति ननु जगदेनो—
जय जय जय हलधरनुत जलधर !

———

# अञ्चल—दीपः

सौदामिनीव घनाञ्चले नीलाञ्चले ननु राजसे त्वं
दीप! चम्पक दीप्तिमानिव नो किमद्य विराजसे त्वम् ।

कामिनी—करपल्लवेन सुकोमलेन हि सङ्गति स्ते
यासि सन्तमसापनुत्यै ततो धन्यतमा गतिस्ते ॥

---

## सौभाग्यम्

चम्पकवन—चलित — पवन—लोलवसन—शोभिते !
अङ्गे तेऽनङ्गे ते साङ्गे खलु दोलिते ।
यद्दृष्टं तत्पृष्टं ननु हृष्टं तालिना
सुभगा त्वं सुभगा त्वं शुभगा वनमालिना ॥

---

## गिरिकल्लोलिनी

परिपीय— सरसतर — जलमति—सत्वर—
मयि कल्लोलिनि ! गिरि—व्रजे !
अहमस्मि—[illegible] [illegible]ऽभिरामं
शान्ति—सदन मिह सुहृत्प्रजे ?

कुर्वंतीं सहर्षं ननु संघर्षं—
प्रस्तर — खण्डै रति — चण्डै—
रेरण्ड—दण्ड मिव खण्डयसि
प्रत्यग्र — काण्डिनं दोर्दण्डैः ॥

---

## अशोकवने

रावण—सन्तप्ता न भवति सुप्ता
सा तव सीताऽशोक—वने शोक—ज्वलने
रक्षःपरिवीता बहुतर—भीता
रोदिति शब्दविहीनमये त्वयि सति सदये ।
सत्येका त्रिजटा सर्वा विकटा
या ता माश्वासयति सदा जीवन—प्रदा
प्रोवाच हनूमान तिशय—धीमा—
निति रामं जगदभिरामं श्रीजितकामम् ॥

---

## प्रापय भवपारम्

अभिमतफलदातः ! सिद्धिविधातः ! सृष्टिस्थितिलयशील !
कस्त्वयि सन्दिग्धे कृत्यविदग्धे, प्रविहितजगबहुलील !
प्रभवति किं भवनं ऋते प्रभवनं धृतपरमाणुशरीर !
प्रापय भवपारं मामविचारं प्रापित—बहुजन—तीर !

———

## शरदागमः

दर्शित—तत—मराल — वरबालः
सोऽयं शरदाऽऽगम — सत्कालः ।
हर्षित — गो — धन — धान्य — समृद्धिः
यत्र, न तत्र कथं सुख—वृद्धिः ॥

———

## हेनाथ !

हे नाथ ! कथं मम दृष्टि—पथं
त्वमिहाऽऽगन्ता भवभय — हन्ता ।

हे नाथ ! कथं वचनं वितथं
वद ते भावि त्वं जग — सविता ॥

———

## वनसौन्दर्यम्

एतदनन्त — वनं तततालम्
पश्यसि किं नहि सरसरसालम् ।
प्रसृमरकलमिह कोकिलवालं
हरि — सुमनो—मोहनं तमालम् ॥

———

## यामिनी कामिनी च

या न सूते सुतं वंशहंसं शुभं
या न पूर्णेन चन्द्रेण वा संगता ।

सा प्रशस्या कथं स्याद्बुधैः कामिनी
सा कथं सत्कुला वा भवेद्यामिनी ॥

———

## नैशनिःस्तब्धता

यामिनि ! कामिनीव सन्तप्ता
किं त्वं मोहवशादसि सुप्ता ।
नीरवता सर्वत्र सुवितता
सम्विद्दीप—शिखा तव लुप्ता ॥

———

## मूर्त्तिमती करुणा

धवल—कमल—दल—विनिहित — चरणा
सहृदय — हृदय — निवासा करुणा ।

दनुज — मनुजपति — पूजन—मुदिता
मम हृदि हरतु दुरिततति मुदिता ।।

---

## अवञ्चन-वञ्चना

इन्दुमुखि ! विन्दुमुखि! भूषण-विराजिते !
पुष्पशर—मानहर—नायक — वराऽजिते !
अञ्जनप—खञ्जनग—लोचन—युगाञ्चिता
हृत्त्वमसि वित्तमसि न त्वमसि वञ्चिता ।।

---

## दम्भकुम्भ—दारिणी

प्रचण्डचण्ड — वाहुदण्ड — मुण्ड — मुण्ड — खण्डिनी
करालया हि जिह्वया चलज्जवा—विड़म्बिनी ।

वराभयोल्लसत्कृपाण—भीममुण्ड — धारिणी ।
शिवं शिवा दिशेदशेष—दुष्ट—दम्भ—दारिणी ॥

———

## ते न विशन्ति मदन्तः

शङ्करपाद - पद्म—मकरन्दे भ्रमरायिता मतिर्मे
नान्यं कमपि कथञ्चन गणये तस्मादसौ गतिर्मे ।
विष्णु—विरञ्चि—महेन्द्र—प्रमुखा देवास्सन्तु कियन्तः
सत्यमहं कथयामि विश्वसिहि ते न विशन्ति मदन्तः ॥

———

## समाश्वासनम्

का न लता नमतिं गमिता भ्रमरेण भरेण निजेन तता
कुसुमेन नवेन नवेन हि या वनमालिपदाम्बुरुहानुगता ।

सुकदम्ब-कदम्ब-लसच्छद—सुप्रतिविम्ब करम्बितनितम्बवती
यमुनानुगते ! वरगोपसुते ! वसनानुगतेव न किं भवती॥

---

## सुरहस्यम्

चम्पक ! ते कलिकाति विभात्यथ दीपशिखेव न खेदमुरीकुरु
तेन हि नैति ननु भ्रमरी ज्वलनस्य भयादिति सत्य मुरीकुरु ।
सा तरुणीकचमध्यगताऽपि विभाति तथैव तमोरिपुसंसदि
किं वद चित्रमये ! सुरहस्यमिदं वत मूढ़जना न विदुर्यदि ॥

---

## शुभ–कामना

शशिशत — विशदस्मिता ऽस्मितां या
रमयति मानस — पंकज[illegible] ।

दिशतु सुरसरस्वती शिवं मे
क्वणन — गुणां वरवल्लकीं दधाना ।।

---

## वररीतिः

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः
स्याद्यतो ननु सुहृज्जन—भीतिः ।
भाव्यतां न खलु लोक — विगीतिः
सेयमस्ति जगतो वर—रीति : ।।

---

## कामान्योक्तिः

जातः श्रीपरमेश्वरादसि रतिस्त्वन्मानस — स्थायिनी
मित्रं सन्मधुपालि—कालि—सुमनोवृन्दः स्वयं माधवः ।

हा हा हन्त ! ! तथापि सन्तममलं सद्धर्मवद्धादरं
त्वं चेत्काम ! निकाममाकुलयसि त्वां किं कथं ब्रूमहे ।

---

## मधुपान्योक्तिः

यदमलसुमनोभिः प्राप्त — गन्धं दिगन्तं
कथमथ न रतिस्ते तत्र भूमौ मिलिन्द !
यदहह परदेशं यास्यये लोलुपस्सन्
मधुप ! समुचितं वा सर्वमेतत्त्वयीदम् ॥

---

## भुजङ्गान्योक्तिः

जातस्तस्य कुले भुजङ्ग ! धवले सत्सिन्धु—सर्वाचला
यस्यासंख्य—फणोपरि प्रवितता पृथ्वी शरावोपमा ।

सङ्गस्ते भगवद्भवेन मणिना देदीप्यमानः स्वयं
त्वं चेद्दोषविमुक्त—दंशनपरस्त्वत्तोऽति —दुष्टोऽस्तुकः ॥

---

## गजान्योक्तिः

राजमत्त — गजराज ! वारितोऽ
प्याः कथं निज — गतिं न मुञ्चसि ।
न श्रुतः किमु दिगन्त—विश्रुतः
कोऽपि पञ्चवदनो महावलः ॥

---

## आत्मोपदेशः

विरम विरमाद्यापि प्रोद्यन्मद ! त्वमतः परम्
न कुरु मनसो वृत्तिं पापेऽति — काञ्चन—पूर्त्तये ।
ध्रुवमथ नचेल्लोका दस्माद्गते मम जीव ! ते
शमन—भवने गुर्वी भूयो भविष्यति यातना ॥

---

# वाष्पगन्त्री

( १ )

जन — निवह — भरं परं वहन्ती
विषमय — धूम — पताकिनीव दीर्घा !
इयमजगरराज—कन्यका किं
प्रचलित—फूत्कृतिरेति वाष्पगन्त्री ।।

( २ )

प्रतिविश्रम—मश्रमं जनानां
चरण — सहस्र —रजोभि राचितऽपि ।
त्यजति न ननु सात्त्विकीं सुशान्तिं
हृदय — मलीमस—धूम मुद्गिरन्ती ।।

———

# विद्यु द्-व्यजनम्

( १ )

प्रचलद्विद्युद् — व्यजनं
किमिङ्गतेनैव निश्चलं च भवत् ।
अनुशासन — शीलत्वं
सक्रिय — पुरुषान्निवेदयति ॥

( २ )

युध्यन् ग्रैष्मैः समन्तान्ननु कणनिकरै स्तेजसां विप्रकीर्णैं—
र्वेगादुत्तापमाप्तं स्वयमपि सृमरै स्तैर्हि विक्षुभ्यमाणम् ।
वायव्यं चक्रमेतत् प्रचलदविरलं लोकसन्ताप-शान्त्यै
योद्धृन् कर्त्तव्यनिष्टामुपदिश दमलां लोक्यते किं न लोक्याम्

———

# जलप्रपातः

( १ )

जलप्रपातोऽयमतीव दूरात्
पतन् जनान् शिक्षयतीदमेव ।
परोपकारः क्रियता — मवश्यं
भवेत्तत श्चेदपि देहपातः ॥

( २ )

ग्रीष्म — प्रपातो न जल—प्रपातो
जलप्रपाऽतः परिचालनीया ।
गिरीश — चूड़ावनतो न यत्र
दुग्ध — प्रभो हैम—जल — प्रपातः ॥

———

# व्योम—यानम्

( १ )

किं राघवो राघव — पुष्पकस्य
सन्देह — सन्दोहमयं जनानाम् ।
सम्पादयं श्चेतसि याति वेगा—
दाकाश — गंगाच्छपय:पथेन ? ॥

( २ )

व्योमयान — मिद— मद्य — भूभुवां
पश्यताममर — लोक — वर्तिनां ।
दुर्गति नंनु सुदीर्घ— विग्रहा
व्योम—यान—पदवीं दधाति किम् ॥

———

## आशा

सम्बुद्धाः स्वयमिन्दु — निर्मलहृदो लोकानुकम्पापराः
दोषणां विगमाय सन्ततधियो दुःखोद्गमं कुर्वताम् ।
नेतारो मम भारतस्य सततं सन्नाहवन्तो भृशं
लोक्यन्ते तदशोक —हर्ष —समयो भूयस्समायास्यति ॥

———

## भारतीय—संस्कृतिः

शरीरमस्या यदि नाम सस्कृतं
किं गौरवं वच्म्यपरं तु संस्कृतेः ।
आजीवनं संस्कृतिरेव यत्र
ततोऽधिका काऽपरसंस्कृतिः स्यात् ।

———

## "चन्द्रः प्रवालप्रभः"

लक्षारञ्जित — पादपंकजगलद्रक्तांशु — सम्भेदभा—
गत्यन्तार्जुन —वक्रकुन्दशकल—प्रस्पर्धि दीव्यन्नखम् ।
दृष्ट्वा मञ्जुमराल—गञ्जनगते मंन्ये गुरूप्रेयसी—
सिन्दूरारुण—विग्रहः किमभव च्चन्द्रः प्रवालप्रभः ।।

———

## "धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः"

येयं भारतसंस्कृति र्विजयिनी सत्ये निरस्तव्यथा
त्रेतायां च तपोविभूतिलसिता शौर्योज्ज्वला द्वापरे ।
तस्या हन्त करालकालवशतः श्वासावशेषायुषो
नाड़ीभावयुषो भवत्यनुपलं धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः ।।

———

# बलारिर्वकारिश्च

( १ )

कुन्ती—मनः-कमल—कुड्मल —बोध—हेतुः
कर्णाढ्य—कौरव—विनाशन—धूम—केतुः ।
कृष्णानुगः स सहदेववनान्त — चारी
तुल्यो वलारिरपि चास्ति पुनर्वकारिः ॥

( २ )

राधामुखेन्दु—कर—दीप्त—सुवर्ण—कर्ण—
भूषापहार — चतुरः स्फुरदुग्रसेनः ।
नागोत्तमाङ्ग — विगलन्नख—मौक्तिकश्रीः
तुल्यो बलारि रपि चास्ति पुनर्वकारि

———

## शस्त्रैश्च—शास्त्रैरपि

विश्वेश ! प्रतिपक्ष—लक्ष—वदनच्छेदोच्छलच्छोणित—
क्षिप्रु—क्ष्मापति—पक्षि —दक्षिणकर—प्रक्षेपज—क्षेपणैः ।
वादीन्द्र —द्विपदर्प— दारणपर— प्रोद्यत्प्रभा— भास्वरै
र्न स्यात् किं भरतावनी विजयिनी शस्त्रैश्च शास्त्रैरपि।।

---

## महिमालयो हिमालयः

उदेति किमुभास्करः कथय पश्चिमायां दिशि
क्वचित् कथमपि स्फुरत्यथ तमस्तदग्रे किमु !
न चीनपरनीचता भवितुमर्हति स्थायिनी
न याति महिमालयो भुवि हिमालयो निम्नताम् ।।



---

# भारतीयं बलम्

देशस्सोय मराति—रक्तनिवहै र्यस्मिन् ह्रदा रोहिता
श्चीनाद्धन्त !! समागतः परिभवो यन्मातृ—मौलिग्रहः ।
नूत्नान्यद्य सुशक्तिमन्ति च गुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति नः
तावच्चीन—विचेष्टितं नहि बलं यावत् समुज्जृम्भते ॥

---

# पराक्रमाभिमानः

सैन्यं चकास्तु कटके पटमण्डपाढ्या—
वस्त्राणि सन्तु निशितानि सितानि कोशे।
नास्तीह संशय—लवोप्यहमस्मि चीन—
मत्तेभ—कुम्भदलनाय मृगाधिराजः ॥



---

## समुत्साहः

कस्यैंवमस्ति बलमत्र भुवि प्रवृद्धं
कःस्थातु मर्हति समक्ष मरिर्गरीयान् ।
प्रब्रूहि चीनमशकस्य कथापि कैव
दिग्दन्ति—दन्त—मुसलानपि चूर्णयामः ॥

————

## विश्वासः

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
यो मातृभूमे र्मम मौलिभूतः ।
पाद–प्रहारं ननु तत्र कुर्वं—
श्चीनो विलीनो भविता धरायाम् ॥

————

# प्रसरी–सरीतु

यस्या बलेन दुरितोद्धत — शत्रुनाशो,
या भारतीय—जन—कीर्ति—समृद्धिहेतुः ।
सा वीरताऽविरतमत्र समुच्छलन्ती
चेतश्चमात्कृतिकरी प्रसरी—सरीतु ॥

———

# कुशलीभवन्तु

शीताऽऽतपादि—जनिता ममितोग्रबाधा—
माधाय मूर्ध्नि नहि ये विरताः स्वकृत्यात् ।
वीरा इमे समर—सागर—मुत्तरन्तः
कल्पान्त—वह्नि—लपनाः कुशलीभवन्तु ॥

———

## प्रविलापः

उद्गच्छदग्निकण—हेतिधरान् परघ्नान्
विघ्नानिवोग्रतर — रूपधरान्निरीक्ष्य ।
शत्रुस्त्रियः प्रविलपन्ति पलायमाना
हा रे ऽहरे ऽहिमकरे ऽमकरे ऽकरे च ॥

---

## मूर्त्ता करुणा

हंसावतंस — लसदासन — भासमाना
नीहार—हार — घनसार — तुषारवर्णा ।
माणिक्यतुम्ब— गुरुहीरक— भव्यवीणा—
पाणिः सुमूर्तकरुणा मुदमातनोतु ॥

---

## विरहगीतिः

उद्धव ! विरहो दून—हृदयमति दलयति रे
वृन्दाविपिन — विलास — लालसा ज्वलयति रे
यमजातेव सुजात—यामिनी जमयति रे
गगनगामि — हिमभानु — विशदभा —भ्रमयति रे
अंग — विलिप्तं शीत — शीतचन्दन मपि रे
विषमुद्वमति फणीव स्रगपि चञ्चलयति रे
अतिशयि — मन्द — सुगन्धि वायुरपि तुदति हि रे
कोऽपि न कुब्जानाथ मिदं किं कथयति रे ॥

———

## कज्जलिका

माधव ! कथं रुणत्सि निकुंजे
नभसि समेता घनमाला ।

तत्रोदेति चपलचपलाऽहं हैका व्रजबाला

माधव............

तरुणतमाल—जालगललग्ना लसति लताबाला ।

दिशि दिशि नृत्यति मत्तमयूरी झिण्टी श्रिततााला।।

माधव ! ............

---

## शुभाशीः

( १ )

सत्य—व्रत—प्रबोध—प्रदायिनी ज्ञानवर्द्धिनी रम्या ।

वीणा —पुस्तक—हंसै विराजमाना सदास्तु हृद्वासा ॥

( २ )

अतुलित—जगदम्बा—मातृदत्ता—मौक्तिक—महा नूत्ना ।

रुद्रप्रसाद — सबलाऽनिरुद्ध — शिवशेखरा सदा भातु ॥

( ३ )

अक्षरमिलिन्द—सङ्कुल — विशदाम्भोजोज्ज्वलत्ववती ।
बोधहरिहास—हेतु—र्विभातु सततं लसद्रमाऽनुपलम् ॥

---

## शिक्षणीयस्त्वरितम्

नीचादपि नीचोऽयं चीनो विश्वास — घाती
सीमानं भारतीयं भंङ्क्त्वा येन विहृतम्
स्थानमुत्तरीयं भारतस्य हिमपर्वतीयं
चेष्टते गृहीतुं ततोऽप्यधिक मनवरतम् ।
हत्वा शीलपञ्चक मति वञ्चकः प्रचारैः स्वै
र्मिथ्यामयै र्निन्दितोऽपि विश्वेऽस्मिन्नविरतम्
लज्जते न लज्जैवास्य मन्ये लज्जितेव गता
भारतीय — वीरैरतः शिक्षणीय स्त्वरितम् ॥

---

## शेषफणाश्चलिताः

गर्जन्त्यो भुशुण्ड्यो भारतीयवरवीराणां
नर्दन्त्यः शतघ्न्यः किञ्च घोरा हि प्रवितताः ।
प्रचलन्त्यः स्फोटयन्त्यो रावैर्घोर—घोरतरैः
श्रोतॄणां कर्णकुहरमारादेव कलिताः ।
एताः सहस्रघ्न्योऽरीणां ननु चीनानां
हृत्कम्पं जनयन्त्यो राजन्ते ललिताः
करलग्ना भारतीय — सेनानामिद्धतराः
सेनाभारभुग्ना ध्रुवं शेषफणा श्चलिताः ॥

---

## प्रर्थना-गीतिः

भारतमथ भारतमस्तु पुनर्भारति ! तव पददयया
पुनरेतु विक्रमोदेवो
ननु पश्यतु भारतवर्षं
कविकालिदास [illegible] भारति! [illegible]लया ।

भारत⋯⋯⋯⋯

पुनरेतु पाणिनि व्याकृति—
तन्त्र—प्रचारको विद्वान्
भव भारविभा—प्रविभासि—धवलचिन्नव—कुवलयवलया ।
भारतमथ भारतमस्तु·········

बहु—पूर्वमेव परमाणो—
व्याकर्ता ऋषिः कणादः ।
परमाणु—युगेऽस्मिन्नेतु पुन स्तद्भव समुदित—हृदया ।
भारतमथ···········

तर्कः — प्रवर्तितो येना—
भवदसौ गौतमो मतिमान्
समुपैतु, ततस्त्वं मुखरतरा लसिता भव शिवकलया ।
भारत·········

———

## शल्यानि मे

( १ )

जनो जगति भिक्षुको भवति, कोऽपि दाता नहि,
प्रयाति नहि मृत्युमप्यथ गृहं गृहे कामिनी ।
सुता अपि, नच क्वचित् किमपि कार्यमप्याप्यते,
रति न परमेश्वरे, हृदि रतानि शल्यानि मे ।।

( २ )

कुचे नहि सबीजता भवति सा रसाले पुन
विंधौ न खलु निम्नता भवति मानवे सा भृशम् ।
न वै बहुलता मुखेह्यसुख एव सा दृश्यते
तथापि न रतिः परे, मनसि सप्त शल्यानि मे ।

( ३ )

स्थितोऽद्य नहि गोखलो न खलु बालगंगाधरो
गतो मदन—मोहनो ननु गतश्च गान्धी तथा ।
पटेल — विलयोऽभवद् दृढ़मतिस्सुभाषो ऽ गमत्
गतोऽपि च जवाहरो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥

———

## न जानीमहे

( १ )

स्वाराज्यं गुरु लप्स्यतेऽत्र जनता प्राप्स्यत्यजस्रं सुखम्
दुःखं स्यान्नहि लेशतोऽपि फलतो नो क्षुत्पिपासाव्यथा ।
याऽऽयाता परसंस्कृति र्ननु गता सा स्यात्स्वकीया तता
हाहैतेषु किमेकमप्यधिगतं चेत्त न्न जानीमहे ॥

( २ )

स्वाराज्यं यदि लब्धमेव कथय श्वाराज्यकल्पं न तत् ?
यज्जाता भरतावनी वृषल–सन्तुष्ट्यै स्वयं खण्डिता ।
पाकस्थान—विधानतो न खलु किं काश्मीर–खण्डोद्गमः
चीनाद्धैमभुवो हृतिः, करगतं किं तन्न जानीमहे ।।

( ३ )

रूसो भूतविकासमत्यधिगतः काऽमेरुकायाः कथा
यः पूर्वं ह्यहिफेन—लीननयन श्चीनोप्यसौ वृद्धियुक् ।
कुर्वन्नाणव — हेति-संग्रहमये ! गर्जत्यभीक्ष्णं पुन
र्नेतारोऽत्र विचारयन्ति भवने किं, तन्न जानीमहे ।।

---

## नीले सुवर्णायते

( १ )

वृक्षोऽयं ननु चम्पकस्य हरितैः पर्णैस्समाच्छादित
श्शाखाभि र्विततो नतो नहि, गतो गर्वादिवात्युन्नतिम् ।
भूयस्त्वेन लसत्सुदीपकलिकाऽऽकारं मनोहारि तत्—
पुष्पं नोऽत्र मणावये किमनणौ नीले सुवर्णायते ? ।।

( २ )

मेघव्याप्ततया वियन्न धवलं हंसाततं शारदं
यद्वत्तद्वदिह स्फुरत्यविरतं शम्पा प्रकम्पान्विता ।
या दृष्टा कविकल्पनायम—दृशा ऽसन्दिग्ध—भावेन हि
ग्रावण्येषा निकषे महत्यथ न किं नीले सुवर्णायते ।।

( ३ )

गौरीयं महती नवाऽऽगतिमती पत्युर्गृहे लज्जया
मा मेऽङ्गानि भवन्तु लोचनगतानीत्थं विचिन्त्यादरात् ।
नील्या शाटिकयाऽनया परिगताऽत्यन्तं मनोहारिणी
विद्युद्दीप्त—मुखी सखीकृतरति नीले सुवर्णायते ।।

———

## तुलसीदासः

( १ )

भारतनभसो यः प्रभाभरः
शीतल-सांस्कृतिकोदिवाकरो-
हाऽद्यास्तमितो रे तमस्तूर्यमथ दिग्वलयम्।

वक्षस्यासने शिरस्त्राणः

शासनकर्ताऽस्तिमुसलमान :
प्रोर्मिल — सलिलोपरि गत—प्राणमिव कमलदलम् ॥

( २ )

सन्ध्याकालो नैकाब्दशत:
कुञ्चित भ्रू-भीषणभालयुतो
व्याप्तोम्बरतलं यथा जलद: कृत-विस्तार: ।
पञ्चाम्बुनदागमन: पूर्वं
कोशलविहारहृत्त त:परं
सर्वोभाग: सम्भ्रान्तोऽभूत् क्व नु निस्तार:।

( ३ )

मोगलदलबलं जलदकल्पं
प्रोन्मदनदतुल्य-पठानयुतम्
बाधते हन्त दिग्देशमर्ति शरतोऽपि खरम् ।
ऊर्ध्वं व्याप्तं घनघनं तम:
प्रस्फुटद्वज्रदहनं हि नभो
भूतलं प्रलयजलधारवहं हरहरमुखरम् ॥

( ४ )

आसीच्चण्डो यो रिपूपरि
प्रातपो यथा तमसस्तूपरि

वुन्देल—खण्ड — आभारहितो हा प्रहतमतिः ।
निश्शेष-सुरभि--कुरवककल्पो
वृन्ते— लग्नोप्यप्राण—निभो
गत उत्सव इव हतचिह्नः प्रोद्गतकान्ति—हृतिः ॥

( ५ )

कालिञ्जर—दुर्गो वीरधरः
पिञ्जरता माप्तः केसरिणा
मस्ति नरोऽन्त र्वहिः किन्नरो गानपरः ।
पीत्वा प्राणासव मसुरगणो
ऽपश्यद्यद्वद्दैहिकं दवम्
दृढ़बन्धन माप्तो जीवो वाऽसौ खिन्नतरः ।

( ६ )

रणवङ्का वीरास्समर —मुखे
ननु भूत्वा सुप्ता राष्ट्रभुवि
प्राक्षर — निर्जर — दुर्धर्षामर — पदकृतगमनाः ।
भारत—वक्षोगत — रजपूता
उत्पत्य गताः खलु सुरदूता
अवशिष्टा नृपवेषा स्मृता ननु वन्दिगणाः ।

( ७ )

इत्थं प्रथमं मौगल—पदत—
स्तूर्णं चूर्णं ननु राष्ट्रबलम्
यावनी — कलाभिः परिपूर्णा जनपद — जनता।
सञ्चितजीवन— जीवनधारा
यावन—सागर ममिमुखीभूय
प्रवहन्ति नदा नदिका, विजिता वशगा नरता॥

( ८ )

नगराण्यथ दिल्ली—पथोपरि
श्रेष्ठानि यानि यमुनासुतटे
सर्वाणि तानि सुसमृद्धि — मयान्यायप्रसरे।
राजा पुरमेतत्तेष्वेकं—
परिपूर्णं व्यवसायप्रचुरं
ज्योतिश्चुम्बित — वरकलश — मधुच्छाया—विसरे॥

( ९ )

युवकप्रमुख श्चेतन—रत्नं
समधीत—शास्त्रकाव्यालपनो
योसावेव हि तुलसीदासो ब्राह्मणदीपः
आयतदृक् पुष्टाङ्गो गतभीः

सन्निर्णयत स्संशय—रहितः
प्रतिभा—मन्दस्मित —सहितोऽसौ ननु शुभ—धीपः ।।

( १० )

शृण्वन् सुखकर—वंशी-शब्दं
समुपायातः श्वसुरस्य गृहम् ।
परिजना अकस्मादागमतः कृतसम्मानाः ।
पश्यन्ति परस्पर मथाऽऽननं
कथयन्ति च कर्णे किमपि कलम्
सहसाऽवोचत तद्भ्रातृ — वधूः "परिचितरत्नः" ।

( ११ )

धिगनाहूतः किमिहाऽऽयातो
धौतः श्रेष्ठो निजकुल—धर्मो
रामस्य न वै, कामस्य न किं दासः ख्यातो यदिहायातो हा ऽनाहूतः ।
आत्मा विक्रीतो निर्मूल्यं
ननु यत्र तत्र वद कः सारो मांसास्थिमये?
क्वगता शिक्षा क्व च विरतिकथा ऽवोचत वनिता शयने शयिता

( १२ )

संस्कारो जागरितः प्रबलः
तत्क्षणं विनष्टः कामखलो

ऽपश्यत् सा वामा नैवेयं प्रतिमा वह्नेः
ज्ञानस्यालोको विस्फुरितः
प्रथमो भावो ध्वस्तः परितो
द्यातः संसारो नाशमगाज्जडिमा चाऽसावचलद् दासः ॥

———

## रजत—स्वर्णजयन्ती

स्वाधीन — भारतस्याति — शुभं
वररजत — जयन्ती — वर्षमिदम् ।
एतज्जग — विद्या — भवनीयं
सुस्वर्णजयन्ती — वर्षमिदम् ॥

[ १ ]

श्री वी० वी० गिरिहि राष्ट्रपतिः
केन्द्र — प्रधान — पद—गतेन्दिरा ।
शिक्षा — मन्त्री नूरूल—हसन्
विहसन् विभाति शिक्षोन्नयनो—
वर —रजत — जयन्ती — वर्ष मिदं
स्वाधीन — भारतस्याति शुभम् ॥

[ २ ]

कुलपति रय मकवरली — खानो—
मुख्यो मन्त्री कमलाधिपतिः ।
कुल — गुरु स्त्रिपाठी गोपालो
विद्या — मन्दिर — विलसद्भालः ।।
सुस्वर्ण — जयन्ती — वर्ष — मिदं
एतज्जग — विद्या — भवनीयम्
सुस्वर्ण — जयन्ती—वर्ष मिदम् ।।

[ ३ ]

उत्तर — प्रदेश—शासनी पुरी
शेषावतार — लक्ष्मण—नगरी ।
समुपाश्रित — हिन्दु—मुसलमाना
विद्यामन्दिर — विलसन्माना
सुस्वर्णजयन्ती — वर्ष मिदं—
एतज्जग —विद्या — भवनीयं
सुस्वर्ण — जयन्ती —वर्षं मिदम्

[ ४ ]

कांग्रेस — — युगल—वरनेतृ—शतं

समता — समाज—वादानुगतम्
जनसंघ — संघटन — क्रान्ति — युतं
विद्यार्थि — नेतृशत — समावृतम्
स्वाधीन मिदं — भारतवर्षम्
वद कस्य न हृदि जनयति हर्षम् ।
वररजत — जयन्ती — वर्ष — मिदं
स्वाधीन — भारतस्याति — शुभम् ।।

[ ५ ]

नन्वस्ति—कला — संकायस्या
धिष्ठाता यः खलु सिंहसमः ।
सिंहो वरजीत स्सोद्य समु—
न्मोदप्रदता मावहन्नयम् ।
सुस्वर्णजयन्ती — वर्ष — मिदम्
एतजग्गविद्या — भवनीयम्
सुस्वर्ण — जयन्ती— वर्ष मिदम् ।।

[ ६ ]

विद्यालय — छात्र — संघ—नेता
प्रथितो रवीन्द्र — सिंहो जेता ।
अध्ययनाध्यापन — सम्बद्धो

जग — विद्यालयोऽद्य सन्नद्धः॥
सुस्वर्णजन्ती —वर्ष मिदम्
एतज्जग — विद्या — भवनीयम्
सुस्वर्ण — जयन्ती — वर्ष — मिदम्
स्वाधीन — भारस्याति — शुभं
वर — रजतजयन्ती वर्ष मिदम्॥

[ ७ ]

एतेऽस्माकं गुरवो गुरवो
भ्रातर एतेऽध्ययने पटवो
ह्येताश्च भगिन्योऽध्ययनरता
दोषेभ्यः समे वयं विरताः॥
स्वाधीन मिदं भारतवर्षं
वद कस्य न हृदि जनयति हर्षम्
सुस्वर्णजयन्ती — वर्षं मिदम्
वर—रजतजयन्ती — वर्षं — मिदम्
स्वाधीन — भारतस्याति — शुभम्।
एतज्जग — विद्या — भवनीयं
सुस्वर्णं — जयन्ती — वर्षं — मिदम्
स्वाधीन मिदं भारतवर्षम्
वद कस्य न हृदि जनयति हर्षम्।

# शोकजलाञ्जलिः

[ १ ]

हृदये करुणाकणाऽपि नो
किमु ते काल ! कराल ! विद्यते ।
हृतवानसि यद्गुणाऽऽकरं
ननु वामाचरणं जगद्गुरुम् ।

[ २ ]

अकरो दपकार मीदृशं
वद कं भारत — भूरियं विधे !
यदति — प्रभ—हीरकं गुरुं
तदमन्दोन्मुकुटात् समाहरः ।।

[ ३ ]

हरता विबुधेश्वरं त्वया
नहि काश्येव हि शोकिनी कृता ।
जगदेव हि शोक — सङ्कुलं
विहितं दुष्ट ! पिशाच ! सर्वथा ॥

[ ४ ]

कुपिता मुखरा सरस्वती—
ननु मां शापवलेन भस्मसात् ।
प्रकरिष्यति घोर — दुःखिनी—
त्यपि भीति र्न हि तेऽभवत्कथम् ।।

[ ५ ]

शठ ! चिन्तय, चेतसा फलं
किमवाप्तं गुरुघोर — कर्मणा ।
अथवेद मरण्य — रोदनं
त्वयि वज्रादपि दारुणे भृशम् ।।

[ ६ ]

शशि — शेखर ! काशिकासु ते
वद — दृष्टि विषमाऽभवत्किमु !
यदशेष — बुधोज्वलं गुरूं
त्वमये स्वात्मनि सन्न्यवेशयः ।।

[ ७ ]

करुणाऽऽकर ! ! रक्षितस्त्वया

न कथं पण्डित — मौलिमण्डनः ।

विरहादिह यस्य सज्जना
विकला भान्ति निरस्ततेजसः ॥

[ ८ ]

अथवा कथयामि किं वृथा
ऽनुमतं तेऽपि महेश ! निश्चितम् ।
अशुचेस्तव तस्य सङ्गमा
च्छुचिता हन्त समागता यतः ॥

[ ९ ]

गुरुवर्य ! दयानिधे ! दया
हृदयात् ते नवनीत—कोमलात् ।
व्रजतः क्व कथं गतेऽस्ति मां
कथय त्वं ननु मिष्ट—भाषया ॥

[ १० ]

कुपितोऽसि कथं जगद्गुरो !
नहि दृष्टिं मयि यत्प्रयच्छसि ।
अपराध — परम्पराऽस्ति चेत्
विदिताः क्षान्तिघना हि साधवः ॥

[ ११ ]

विलपन्ति लुठन्ति भूतले
सततं शिष्यगणाः सहस्रशः ।
कृपया समुपेत्य तद्दशां
न कथं पश्यसि तर्कवारिधे ! ।।

[ १२ ]

जरती जननी स्मृतिं गता
न कथं ते व्रजत स्तपोनिधे !
विरहात्तव या विमूर्छिता
विलुंठन्ती भुवि दृश्यते मुहुः ।।

[ १३ ]

वद यास्यति कां दशामियं
रुदती संस्कृत — भारती — सती ।
धवले हृदयाम्बुजे ऽ वसत्
तव या साऽद्य हता वराकिनी ।।

[ १४ ]

रुदतो निजवान्धवां स्त्यजन्
गुरु — शोकाम्बुनिधौ विनिःक्षिपन् ।

सकलान् मनुजानहो ! कथं
चलितस्त्वं विबुधेन्द्र ! सद्गुरो !

[ १५ ]

अधिकं विनिवेद्यतां मया
किमु विश्वेश्वर—रूपधृग्गुरो !
चरणाम्बुजयो स्तु पूज्ययोः
सततं शोकजलाञ्जलि र्मम ॥

---

## शोकाश्रुविन्दवः

[ १ ]

हिंस्याऽऽसीद्यस्य हिंसा, विमलतममते र्वञ्चना कोपभूमि-
र्भ्रष्टाचार-प्रचारे निरतिशयघृणा ऽस्पृश्यताऽन्यानुरागे ।
रागो लोकैकताया मपि च परतरत्याग एवाति लोभो
हा कष्टं दुष्टनष्टो भुवनजनमनोमोहनो मोहनोऽसौ ॥

[ २ ]

मनसि वचसि काये स्थापिता येन गीता
कृतिरथ मतिभूमौ नैव लोकै र्विगीता ।

मनुजनुषि समग्रे बन्धुता ऽतीव नीता
ऽनवरतरतिरासी द्यस्य रामे परीता ।।

[ ३ ]

यो दासतां दलितवा न्ननु कष्टवृष्टि—
भिर्वारितोऽपि वरभारत — मातृभूमेः ।
वैदेशिक— प्रखर — पादतल — प्रहार—
श्रेण्युत्थ—तीव्रतर-कष्ट—विमूर्च्छितायाः ।।

[ ४ ]

यः कर्मयोग मवलम्ब्य महात्मभाव—
मासाद्य लोकगुरुता — मुररीचकार ।
प्रोद्यद्य श-स्सुरभि—चन्दन—चर्चिता—भू–
स्तस्येति किं समभवत् प्रथितः स गान्धी?।।

[ ५ ]

सकललोक — हृदम्बुज — भासने
समभवन्ननु यः प्रखरांशुमान् ।
परम विस्मय एष कथं पुन—
र्निखिल — लोचनयो — रमृतांशुमान् ।।

# सारस्वतं रूपत्रयम्

[ १ ]

या शक्तिः कारणाना मपि च जनिमतां जङ्गमस्थावराणां
ग्राह्याऽथ ग्राहिकाऽपि ग्रहणमयतनु र्या ग्रहीतृ-स्वभावा।
यामाहुः केचिदन्ये परमशिवगतां प्रस्फुरन्ती महन्तां
सम्पूर्णाऽऽनन्ददा सा जगति विजयते चिद्विलासस्वभावा ।

[ २ ]

यत्त्वाध्यात्मिक—रूपमाद्य मनघं लोकेऽत्र विद्योतते ।
ज्ञानं वाक् च तदीय मुज्ज्वलतरं संश्रित्य तज्जायते ।
सर्वेषां व्यवहार इत्यवगतं केषां न वीक्षावतां ?
तस्मात् सर्वनमस्कृता भगवती चित् सम्विदाख्या परा ।।

[ ३ ]

या भक्तानां हृदन्त र्नदति गुणमयी सद्विपञ्चीं दधाना
हंसोत्तंसे लसन्ती विशद-शशिरुचिश्शुक्लमाल्याम्बराढ्या
कैश्चित् सैवाधिदेवी मृदुपगततनुः पूज्यते लौकिकै स्तैः
तैस्तै रेवोपचारै र्जल-फल-कुसुमै र्धूपदीपादिभिश्च ।।

[ ४ ]

रूपं यद्वै तृतीयं परम—हितकरं साक्षराणां जनानां
सर्वेषामेव यत्र प्रभवति सततं सर्वथैवाधिकारः ।
भौतं तस्यास्तु पूतं जगति निगदितं पुस्तकं शस्तरूपं
तस्य प्राज्यं महत्त्वं विगणयितु महो कस्य जिह्वा क्षमा स्यात

---

## संस्कृत-वाङ्मय—महत्त्वम्

[ १ ]

धन्यं संस्कृत—वाङ्मयं प्रविततं यत्कुक्षिगो राजते
वेदो ज्ञाननिधिः समग्रजनता — कल्याण — कल्पद्रुमः ।
सीतारामकथा — यथातथपथा वाल्मीकिना ख्यापिता
व्यासेनापि च यत्र निर्मित मभूद्विस्तारवद्भारतम् ॥

[ २ ]

मन्वादि—स्मृतयो विभान्ति रुचिराः कृत्यव्यवस्थापिका
आख्यान—प्रचुराणि सन्ति रुचिराण्येवं पुराणान्यपि ।

प्रज्ञैर्गौतम — जैमिनि — प्रभृतिभि र्यद्वर्धितं यत्नतः
स्वीयामूल्य—विचार—रत्ननिकरैः सद्दर्शनाख्यैः पुरा ॥

[ ३ ]

चार्वाकै र्जैनवौद्धैरपि विबुधगणै रादृतं यद्विशुद्धं
यत्सेवा—बद्धभावै र्ननु यवनजनै रुन्मुखैरप्यकारि ।
पाश्चात्यै रप्यनेकै रमितमतियुतै र्यत्ससमालोचितं तत्
कस्य स्यान्नो नमस्यं प्रथिततम गुणैरार्यसाहित्यमाद्य म् ॥

———

## गुरुगोविन्द-सिंहः

[ १ ]

वाण-श्येनौ करकमलयो मौंक्तिकस्रग्धनुष्मान्
प्रांशुर्गौरः कटिलसदसि र्वीर —शान्तोज्ज्वल—श्रीः ।
कृष्णश्मश्रु र्निटिल — विलसद्रत्न—मौलित्र—दीप्तिः
चित्रं चित्रे जनयति गुरुः श्रीलगोविन्द— सिंहः ॥

[ २ ]

भ्राजत्पाटलिपुत्र—लब्ध—सुजनु—र्यो बाललीलां व्यधात्
बालै र्लोलविलोचनैः प्रतिदिनं तत्रैव लीलोन्मुखः ।

वृद्धां काञ्चिदपत्य — दैन्यवशात स्सम्वीक्ष्य दीनाननां
पुत्रस्तेऽहमिति ब्रुवन् समकरो त्तां स्तन्य—पूर्णस्तनीम् ॥

[ ३ ]

भव्यानन्दपुरे च यः परिवसन् काश्मीरदेशागतान्
विप्रान् यावन—दुष्कृति—प्रविगलत्प्राणान् प्रपश्यन्न सौ ।
तातं किञ्च सुतानुकम्पिहृदयं कर्तव्य— चिन्तान्वितं
प्रोवाच स्थिरधीः पित र्न भवता चिन्त्योऽस्मि सिंहार्भकः॥

[ ४ ]

यज्जातावति — कोमलावपि दृढौ सद्धर्म — संरक्षणे
धैर्यं तत्यजतु र्न वै कथमपि प्रोद्बोधितौ दुर्जनैः ।
प्राणान् किन्तु दृढाऽऽचितेष्टक - महाभित्यावबद्धौ मुदा
धन्यो यश्च न विव्यथे सुतमृतिं श्रुत्वापि धर्मव्रती ।

[ ५ ]

शिष्यानप्रतिबद्ध—सत्वरगतीन् खड्गोज्वलान् दीक्षितान्
कृत्वा यावन-दुर्विनीत्यपनयं चक्रे स्वयं यः स्फुरन् ।
विद्वद्रत्नगणै स्सदा परिवृतः काव्यामृताम्भोनिधौ
मज्जन् सज्जन—रञ्जनः प्रतिपलं धर्मद्विषां गञ्जनः ॥

[ ६ ]

शिष्यान् पञ्च सुनिर्मलान् प्रविलसत्काषायवस्त्रान्वितान्
काश्यां प्रेषितवान् भवन्तु सुधियः शास्त्रे कृत-प्रश्रमाः ।
एते सत्पथदर्शिनः सुकृतिनो यच्छिष्टमार्गा इमे
शिष्यास्स्युः शुभमार्गगामिन इति प्रोद्यत्प्रताप स्तु यः ।

[ ७ ]

कुर्वन्नप्यखिलं हि कर्म विहितं शास्त्रान्निषिद्धं त्यजन्
ध्यायन् ब्रह्म सनातनं विशदयन् मार्गं सतां सर्वदा ।
य स्संसार मसार माशु कलयं स्तीर्थान्यटन् दक्षिणे
हैद्रावाद मुपागतः परिजहौ देहं स्वयं लीलया ।।

---

## स्वागत–गीतिः

सुस्वागतं बुधानां कृपया समागतानाम् ।
.............................................

[ १ ]

विषमेऽत्र हन्त काले
कुमहार्घता — कराले ।

क्रियतां कथं सपर्या
भवतां महोदयानाम् ॥

सुस्वागतं.....................

[ २ ]

द्रविणं तथा करे नो
द्रुहिणं वदामि किमहम् ।
दारिद्रय — दाव — दीर्णा
गृहिणः करोमि किमहम् ॥

सुस्वागतं.....................

[ ३ ]

भावस्य नास्त्य भावो
हृदयेऽत्र केवलं मे ।
अखिलं तमर्पयामि—
प्रतिभा— विभासितानाम् ॥

सुस्वागतं बुधानाम्........

[ ४ ]

नहि चन्दनं समीपे
किमतोऽस्तु वन्दनं ते ।

क्षतमक्षतं मदीयं
किमतो ऽभिनन्दनं ते ।।
सुस्वागतं.......................

[ ५ ]

ललिता प्रसून—माला,
ऽपि च नार्थमन्तरेण ।
प्रविभासितं गलं या
कुर्यात् सहृज्जनानाम् ।।
सुस्वागतं.......................

## देश-परमेशगीतिः

] १ ]

यत्र देशे प्रभो ! ते स्तुतिर्गीयते
तत्र वासो भवेन्मे सदा सर्वथा ।
यत्र देशे स्तुतिस्ते न वै गीयते
दग्धता मेतु तूर्णं न वच्म्यन्यथा ।।
यत्र देशे.......................

[ २ ]

सा धरैवास्तु मे जन्मदात्री सदा
सैव भूयात् प्रभो ! देह—धात्री सदा ।

सैव जायात् प्रभो ! भोगदात्री सदा।
यत्र जातोऽभवस्त्वं न वच्म्यन्यथा ।।

यत्र देशे.................

[ ३ ]

यस्य वै मृत्कणा त्वत्पदेनान्विता
यन्नदी त्वत्पदाम्भोजतो निर्गता ।
यस्य तेज स्त्वदास्योत्थ—तेजोऽन्वितं
सोऽस्तु देशो ममानन्ददः सर्वथा ।।

यत्र देशे.................

[ ४ ]

यस्य वायु स्तव श्वास—सम्पर्कतो
जात आसीत्प्रपूतो बहिर्निर्गतो ।
यस्य खं पूतमासी त्तवाऽऽ सङ्गत
स्सोऽस्तु देशो ममानन्ददः सर्वथा ।।

यत्र देशे प्रभो ते स्तुतिर्गीयते ....
तत्र वासो भवेन्मे सदा सर्वथा ।।

———

# हिन्दी—संस्तुतिः

[ १ ]

राष्ट्रस्यास्य प्रभवतु मिथो भिन्नराज्याश्रयाणां
सम्पर्काय प्रसृतिबहुला सम्विधानानुसारम् ।
हिन्दी पूता विकृति—रहिता देववाणी—प्रसूता
नाऽन्या काऽपि, प्रवदति न कः प्राप्तराष्ट्राभिमानः ।।

[ २ ]

देशो योऽयमराति—भीषणविभ — श्रीभीमसेनोद्भवो
धर्मोद्भासित -- संस्कृतिः प्रमहती यत्राऽऽगताऽनादितः ।।
तस्यास्योद्यमतः सुसंस्कृतमतीनां राष्ट्रसंसेविनों
हिन्दी, चन्दन-विन्दु रिन्दु-सुभगे भाले विभातु स्फुटम् ।।

[ ३ ]

अस्ति संस्कृत — मतीव शक्तिमत्
किन्तु तस्य न तथाऽद्य विस्तृतिः ।
साध्यते न खलु यावदत्र सा
तावदत्र तनयाऽऽदरः परः ।।

[ ४ ]

हिन्दी संस्कृत—निष्ठता मुपगता राष्ट्रेऽखिले भारते
प्रव्याप्तिं ननु संस्कृतस्य च पुनस्तद्वद्ध-सत्संस्कृतिम् ।
सम्पाद्याशु समानयिष्यति समैक्यं तद्धि यत्प्रेप्सितं
भीतिः खण्डनजा पुन र्नहि भवेद्राष्ट्रस्य कस्मादपि ।।

[ ५ ]

यस्याः पाद—विसारिका कृतवती स्वातन्त्र्य—हानिं परां
याऽऽरूढ़ा न चकार किं सुमहतो राष्ट्रस्य मे खण्डनम् ।
याऽद्य ज्ञान—विवर्धनं न कुरुते ह्रस्ता ऽप्रशस्ति गता
भ्रातर्ब्रूहि विड़ालवालनयना साऽऽङ्ग्ली कथं स्थाप्यताम् ।

[ ४ ]

जापानीव निपीयतां यदि रुचि र्वा जार्मनी वाऽर्ज्यतां
रौसीवाऽथ वशीकृता तव मुदे सा जायतां न क्षतिः ।
शिक्षा—मन्दिर—कक्षकोण—कणिकास्त्रेवाद्य सा तिष्ठतु
प्राग्वन्नो कथमप्यबाधगतितः सर्वाङ्ग—सञ्चारिणी ।।

[ ७ ]

भारतस्य भिन्नभागभासिनी लिपिस्सती
विभातु भिन्नवाग्विभा-विभासिता प्रभूयसी ।

परन्तु सर्वभारतीय—वाग्विभासिनी परा
परा न सा कदापि देवनागरी गरीयसी ।।

[ ८ ]

जयतु जयतु हिन्दी नागरी किञ्च रम्या
प्रतिगृह मिह नांग्ली त्वस्तु कस्यापि काम्या ।
प्रभवति परकीया किं स्वकीया कदाचि-
न्न भवति यदि, तूर्णं त्यज्यतां तत्र रागः।।

[ ९ ]

इतिहास मुपास्य गम्यतां
न परः क्वापि गतः स्वकीयताम् ।
अतएव हि कथ्यते जनैः
सुरवाणीसु परः प्रविद्विषन् ।।

———

## परिवार-नियोजनम्

[ १ ]

नियोजनं ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठ-
मासीत्पूर्वं भारते यत्प्रशस्तम् ।

नोचेच्छक्यं तत्त्वया कर्तुमद्य
भिन्नोपायालम्बनं कार्यमेव ।।

[ २ ]

परिवारनियोजनार्थं मेव
प्रतिषिद्धा विधवाविवाहवार्ता ।
ननु सा यदि चाल्यते, तदानीं
जनिसंख्यानियमो विधेय एव ।।

[ ३ [

भक्ष्यं नो चेद्दातु मद्यास्ति शक्तिः
शिक्षा मुच्चां वा सुतेभ्यो निजेभ्यः ।
नोवा शक्यः संयमो मानसस्य
भिन्नोपायो ऽपत्यरोधे ध्रुवं स्याः ।।

[ ४ ]

मृत्योः संख्याऽल्पीकृता चेद्विभिन्ने—
भ्यो हेतुभ्यः सच्चिकित्सादिकेभ्यः ।
नापत्योत्पत्ते र्निरोधं विदध्या
अर्थस्वास्थ्यं तर्हि न स्यात् समाजे।।

[ ५ ]

वर्गः कश्चिद्भारतीयो यदिस्या
दत्राधिवयोत्पत्तिरोधे विरुद्धः ।
धारा — निर्माणं तदा दण्डदायि
कार्यं यस्मा न्नो भवेद्वर्गवृद्धिः ।।

[ ६ ]

एतद्ध्येयं किन्तु सर्वैरवश्यं
भिन्नोपाया ऽऽलम्बनं नोऽपथीष्टम् ।
नाऽनाचारो येन वृद्धः समाजे
भ्रष्टं कुर्या त्तं सदाचार —मार्गात् ।।

[ ७ ]

यत् स्थानं मेरुदण्डस्य
देहे प्राणवता मिह ।
सदाचारस्य तत् स्थानं
समाजे मनुजन्मनाम् ।।

———

## पशुपतिश्शरणम्

पशुपतितां पशुपतितां
समपाकर्तुं दधाति पशुपतिताम्।
पशुपतितां चाऽऽधातुं
योऽसौ श्रीपशुपतिः पतिश्शरणम् ॥

---

## दिनाधीश्वरः

यत्कारुण्यकणादिदं जगद भूद्यः पाति सल्लीलया
यद्भ्रूभंगवशाद्विनंक्ष्यति पुनः सर्वेश्वरः सर्वभृत्।
चक्षुर्यो जगतां न केवल मसौ नित्योदयो मूर्तिमान्
कल्याणं वितनोतु तत्र—भवतां भूयो दिनाधीश्वरः ॥

## श्रीगणेशः

कार्पूरं गौरिमाणं निजदशनगतं स्वाङ्ग—रागारुणिम्ना
प्रावालीं कान्तिमाप्तं तत मथ सहसा वीक्ष्य सञ्जातहर्षः।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां भुजाभ्यां लसदभयवराभ्यां सपाशाङ्कुशाभ्या
माश्लिष्यन् वृद्धि-सिद्धी दिशतु वरवधूमङ्गलं श्रीगणेशः

इति काव्य-कल्लोलिनी समाप्ता ॥

# श्री सुन्दरीदण्डकम्

जय जय श्री त्रिपुरे ! प्रोच्छलत्तुङ्गदीव्यत्तरङ्गावली—लास्य-सुव्यक्त —फेनाट्टहास-प्रभाजाल-संछादितान्त—विस्तार—शोभासनाथा-मृताम्भोधिमध्य — स्फुरत्सत्स्वपुष्पामिताऽऽमोदमाद्यद्दिगन्ता—प्रसंख्यात—नीपाटवीयुङ्मणिद्वीपमध्यस्थ-माणिक्यगोमेद—वैडूर्यमुक्ता-प्रवालातिपीताभसत्पुष्पराग — प्रविक्रान्त—हीरद्वितिद्योति-नीलादि—रत्नावली-भासमुद्भासित-त्वाद्यथार्थं स्वनाम्ना परिभ्राजमाने तु कल्प-द्रुमाणां सुमप्रोत्थतृप्ति—प्रदामन्दगन्ध—प्रबन्ध—प्रमत्त—द्विरेफावृतानां प्रवाट्या समावेष्टितत्वेन विभ्राजमाने हूयमाने विमानाऽऽकृति सन्दधाने तु चिन्तामणेर्मण्डपे, ताण्डवं यत्र कुर्वन्ति बालाऽऽकृतिं सन्दधाना महामानिशक्र-प्रमुख्यामराः,कोऽपि नो यत्र पुम्वेषधृक् स्थातु-मर्हेत्कदाचित् क्वचित्तत्रमञ्चे शिवाकार—धारिण्यलं निस्तुलाभिख्य-सर्वेशपर्यङ्किकां स्वाङ्गसङ्गैरभङ्गैरलंकुर्वती सच्चिदानन्दरूपा परिध्यायसे योगिभि र्निर्मलान्तर्युतैरच्युते ! त्यक्तसर्वेषणैरप्ययं किं पुन र्व्यक्त-सर्वेषणैः, सुन्दरि ! त्वं स्फुरद्रत्न-निर्माणभृत्स्वर्ण-काञ्ची —सनाथेन मध्येन विभ्राजमाना परिक्षीणता मादधानेन, किञ्च स्तनाभ्यामुभाभ्यामिभ-प्रार्भकोत्तुङ्ग-कुम्भप्रतिस्पर्धया संयुताभ्यां समुद्भासमाना, शरत्पौर्णमासी-समुद्यन्निरङ्कप्रभाजाल-सूल्लासि—चन्द्रं

तिरस्कुर्वती । सान्द्र -सिन्दूर -विन्दूल्लसद्-दीप्त-दाम्यकुरत्नङ्कजास्यो-
द्गतेनामितेन स्वकीयेन सौन्दर्य -सारेण हारेण तारेण सुस्थूल-तारा-
गणेनेव सन्मौक्तिकीयेन चात्यन्त—नैर्मल्यभाजा लसन्ती, हसन्ती सदा-
वीक्ष्य भक्तानशेषान् सुरांश्चासुरान् , योजयन्ती जयन्ती महानन्द-
सन्दोह-सिन्धु-प्रवाहैस्ततैः सर्वतो,धारयन्ती कराब्जैश्चतुर्भिर्धनुर्वाणपा-
शाङ्कुशान् दीनरक्षास्वभक्तारिपक्षक्षयेषु प्रदक्षांस्त्वमेका परानन्ददात्री
परानन्द—रूपापि सर्वस्वरूपा परं मोहयन्ती स्वरूपैरहो दुर्निरूपैर्भवं
देव-देवं शिवं भावयन्ती भवम्,मे स्तु सर्वा कृतिस्ते परार्चा ध्रुवम्,जल्पनं
ते जपः शिल्पमस्तु प्रिया तेऽथ मुद्रा गतिः प्रोल्लसद्दक्षिणा दक्षिणेष्टा-
प्तये, प्राहुति र्भक्षणं,रक्षिणी,सर्वतो मे प्रणामोऽस्तु सम्वेशनम्, यत्सुखं
सर्वमात्मार्पणं निश्चितम् । यो मनुं ह्लीमिति प्रह्वभावेन ते भावयत्यम्ब!
सर्वा सुसिद्धिःकरे,नात्र सन्देहलेशोऽस्ति मां बालकं पालय त्वं महेशि!
प्रभूतं नमो, देवि ! श्री सुन्दरि! प्रोदितार्कारुणे! देव्यपर्णे! सुकारुण्य-
पूर्णे ! नमस्तेऽस्तु- मात र्नमस्तेऽस्तु नित्यं नमस्तेऽस्तु नित्यं नमस्तेऽस्तु
नित्यं नमस्तेऽस्तु ।।३।।

इति श्रीसुन्दरदण्डकम्

# भुवनेश्वरी-दण्डकम्

जय जयानन्त—कोटि-प्रविख्यात-ब्रह्माण्ड-भाण्डोद्भवस्थित्यभाव-प्रभावे ! भवोद्भासनोद्यत्फुरत्पङ्कजाली-बृहत्प्रेमरागारुणोत्तप्त —कार्तस्वर-स्तीर्ण-गोलाऽऽकृतिस्थालिकाकल्प-श्रीमद्दिनेशप्रभाजालकल्पं प्रभाजाल मुल्लासयन्ती स्वकीयैर्महाकोमलै रङ्गजातै रजातै रसदा सर्वदा सर्वदात्री, घनोन्मुक्त नैर्मल्यवद्विष्णुपादं प्रकाश्य स्थितां, विम्व पूर्णत्व—वैगम्यतो— र्द्धेन्दुलेखां किरीटेऽमलां रत्नराशि—प्रभाजाल—सञ्छादिते तप्तकार्तस्वरीयेऽमले धारयन्ती, युता च स्मितेनातिरम्येण तत्पङ्कजं फुल्लमास्येन सुस्मारयन्तीक्षणेन त्रिकेण द्विरेफत्रयेणेव युक्तं, युतेन प्रशस्तेन शस्तं निरस्तं समस्तं हि खेदं पदध्यायिनां ज्ञापयन्ती परा तत्परा तत्पराणामहं मय्यवश्यं प्रबुद्धौ प्रवृद्धौ, । १ । प्रवृद्धौ स्वकीयौ सुकार्तस्वरीयौ पयःपूर्ण —कुम्भा विवात्यन्त—रम्यौ स्तनौदर्शयन्ती न धर्मार्थ—कामापवर्गेषु कस्यापि चैकस्य लाभेस्तु मत्सेवकानां लवस्संशयस्येति— विज्ञापनार्थं चतुर्भिश्शुभै र्बाहुभिर्भासमाना ह्यमानाऽपि हस्तोत्पलेऽभीति —मुद्रमनिद्रां दधानाऽपरत्र—प्रभाढ्ये वरं दर्शयन्ती प्रविज्ञापयन्ती शिवं भावकानाम्, परेषां परेषां च तेषां भयस्योद्गम,याङ्कुशं तीक्ष्णतीक्ष्णम् तथान्यत्र पाशं गताशत्व -विद्योतनाय स्फुरस्यम्ब! हृत्पङ्कजे यस्य नूनं न गर्भस्थिति-

भाविनी तस्य मात स्ततः पश्य सुस्निग्ध —दृष्ट्या यतो मे भवेत्सु-
स्थितैही परा चाति तूर्णम् । २ । प्रपूर्णं कुरुत्वं प्रपूर्ण-कुरुष्वं सुतं मां
सुदीनं-—सुतं मां सुदीनम्, नमस्तेऽनु देवि प्रसीद प्रसीद, नम-
स्तेऽस्तु भुवनेश्वरि त्वं प्रसीद । यो जपेत्ते प्रबीजं प्रबीजं जनैः स्वस्य-
विघ्वस्य साध्वस्य भूताधिवासस्य भोगं सुभुंक्ते सुखैकान्तिकं दुःखलेशं
कदाचिन्न हे चिन्मये! मृन्मयेऽत्र श्रियाऽमन्दया राजते भ्राजते पुत्र-पौत्रा-
दिभिः किञ्च मित्रादिभिस्सत्यमेवात्र' हृत्पङ्कजेऽपङ्कजे वासमाधेहि
देहि स्मृतिं स्वां सदा, देवि! तुभ्यन्नमो देवि! तुभ्यन्नमो देवि! तुभ्यं नमो
देवि! तुभ्यं नमः ॥ ३ ॥

इति भुवनेश्वरी—दण्डकम् ।

# छिन्नमस्तादण्डकम्

जयजयात्यन्त—सौन्दर्ययुक्कामिनीसद्रति—प्रांशुबाहुद्वयाऽऽबद्ध—सद्विग्रहं बाहुयुग्मेनच स्वेन तामाविबध्य व्यवायाऽऽ कुलं काम-मेवासनीकृत्य——विन्यस्त——पाद——द्वयाम्भोजिनि ! प्रस्फुरन्तीं जवामाभया स्वीयया सम्विजित्य स्थिता दिक्पटोद्यत्कटि दक्षिणे स्वे करे कर्तृकां तां स्वरक्तै शिरश्छेदतः प्रोद्गतै र्विप्रलिप्ता-ङ्गिनीमात्म—सन्मस्तकच्छेदिनीं धारयन्ती। परे स्वं शिरः प्रोत्पलाभं गलप्रोद्धलद्रक्तधारं सुधावपिवत्प्रोल्लसन्नागबद्ध——स्फुरद्रत्न—भूषं च नेत्रत्रयी—सङ्गतम्, वक्षसि प्रोत्पलेनारुणनातिरम्येण चालङ्कृता, दक्षिणे मुक्तकेश्याच सुश्वेतया कर्तृका-खर्परासवत-हस्ताब्जया वर्णिनीत्या-ख्ययोद्यद्रजोजातया डाकिनी—रूपया त्वत्कबन्धोच्छलद्रक्त-धारां परां चाशिवन्त्या मुदा संयुता। १। नागतो बद्धमणिमूर्द्धया वामभागस्थया किञ्च व्यत्यस्तपदकञ्जया, ध्यायिनामिष्टभूति—प्रदत्वं वहन्त्या सुशक्त्या परा संज्ञया डाकिनी-रूपयाऽत्तु जगद्विश्वनाशक्षणे शक्तया, तामसत्वं परं धारयन्त्या पुनस्त्वत्कबन्धोच्छलद्रक्तधारां मुदाऽथ तृतीयां समाश्वादयन्त्या सदा संयुता, त्वं महादेवदेवी परा सर्वतस्सर्वदा सर्व-दानक्षमा। २। वेदभूम्यक्षरं त्वन्मनुं मायया लज्जया कामबीजेन वा-चा च वज्रद्वयान्तरे हृद्वयं कल्पितं स्वाहान्तं ....स्यास्ति तं ध्यायतां

साधकानामये ; त्वं प्रसिद्धा सुसिद्धिं गतानां यतस्तन्नमस्तेऽस्तु हे छिन्न-मस्ते परे तन्नमस्तेऽस्तु हे छिन्नमस्ते शिवे! सुप्रशस्ते यशस्तेऽम्ब! सर्वत्र सं राजते, भ्राजतेऽसौ यशो —राशिभिर्नान्यथा। दण्डकेनामुना त्वां परिस्तौति यस्तस्य बाधानिराधारतामाप्नुयाद् देवि! किम्वा परा-धारतामाप्नुयाद् देवि ! तुभ्यं नमश्छिन्नमस्ते शुभे सन्नम स्तेऽस्तु मे चिन्नमस्ते परे ! त्राहि मां छिन्नमस्ते नमस्ते नमः, पाहि मां छिन्नमस्ते नमस्ते नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमः ॥ ३ ॥

इति छिन्नमस्ता—दण्डकम् ।

# भैरवीदण्डकम्

जय जय प्रातरुद्यत्सहस्रत्ववद्भानु-भाभासमानाङ्गजातान्विते ! क्षौमवासोऽरुणं धारयन्ती गले मुण्डमालां विशालां दधाना महादेवि ! भैरव्यये ! रक्तसंलिप्तपीनस्तनाभ्यां युते ! सच्चतुष्ट्वोन्मृड़ाला-ग्रसम्फुल्ल –पद्मप्रशस्तेषु हस्तेषु मालां तथा पुस्तकी मेवमेवाभयं वं वरं चादधाने! जनस्त्वां त्रिनेत्रोल्लसद्वक्त्रपद्मश्रियं मन्दहासान्वितां, वद्ध शीतांशु—खण्डप्रभाजाल— भृद्रत्न—निर्माण—भास्वरिकरीटान्वितां ध्यायति प्राप्तविद्यो यशस्वी भवन्भाति भूमावसौ यो न वै संशयः ।१। त्वं पुरारेः पुरारिस्त्र-सम्पादिनी, ब्रह्मणश्शक्तिभूता तु वाग्वादिनीन्द्रस्य गेहे शची सर्वदेवस्तुता, विष्णुगेहे च पद्माऽपि पद्माश्रिता, त्वां विना-देवि ! को भैरवत्वं गतो भैरवत्वं विना केन शत्रुजितः शत्रुजातं न निर्जित्य को भूतलेऽभूतले वा प्रयातो महस्वी स्वतो, योगिनो ये परि-त्यज्य सांसारिकी वासनामाश्रयन्त्यात्मनिष्ठां परां, संलभन्ते विमुक्ति न तेऽप्यम्ब ! तद्भैरवत्वं विना यत्त्वदासेवनात् । भरैवत्वं भवेद्योगिनो नैव चेत्किं प्रभीता स्तदाहृद्गता श्शत्रव स्सम्भवेयु-र्महादेवि ! कामादिका, नैव चे त्ते कथं तद्वहिर्गामिनो, हृद्गतत्वे रिपूणां हि कामादिकानां न सम्भावना मुक्तिसिद्धेर्दृढ़ा, भैरवत्वं ततोऽपेक्षितं योगिनां निश्चितं देवि ! तेषां मुमुक्षावताम् । २ ।

भैरवत्वे च भीता हि कामादयश्शत्रवो योगिनो यान्ति नाशं-गताश्शत्रवो हृद्गता यद्विनाशं ततो मुक्ति-सम्पत्ति-सम्भावना सुस्थिरा,! अम्ब!कामादिशत्रोर्विजेतृत्वतो योगिनो वीरसंज्ञां लभन्ते यत स्तत्त्वमेवासि हेतु र्न किं भुक्ति —मुक्त्योरये सर्व—देवाधि—देवि ! प्रसन्ना भवत्वं शिवे ! भैरवि स्पन्दरूपे! सदा यं विना नो शिवो,यं विनाऽसौ शवः । पाहि मां सत्वरं त्राहि मां सत्वरम् । यो जपेन्मन्त्र राजं सदा वै हसैं सम्पुटं हस्क्ररीं, तस्य सिद्धिः करे, तस्य ऋद्धिः करे, तस्य वृद्धिः करे, सत्समृद्धिः करे तस्य पुष्टिः करे, तस्य तुष्टिः करे, तस्य नष्टा भवेत्सर्वदाऽऽपत्परे ! तेन सृष्टाभवेत्सर्वसम्पत्परे ! तस्य पुष्टो भवेत्सर्वथा विग्रहस्तस्य नष्टो भवेसर्वतो विग्रहस्सर्वदा ते नमस्तेऽस्तु देव्यम्बिके ? देवि ? दुर्गेऽपवर्गान्तिदे ते नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि तुभ्यं नमः ॥ ३ ॥

इति भैरवीदण्डकम्

# धूमावती-दण्डकम्

जय जयानन्तब्रह्माण्ड-भाण्ड-स्फुट-स्फोटन प्रोद्यतोग्राग्नि-धूमान्धकार-प्रभे ! भीषणे!सर्वदा शत्रु-संहार-तात्पर्यवन्मानसे! देवि धूमावति! स्वानुगारातिभीत्यै विवर्णाऽऽकृतिं दोषिणीं दीर्घदीर्घां च मालिन्यवद्-वस्त्र-युक्ताङ्गिनीं मुक्तिमन्मूर्द्धजां रुक्ष-रूक्षां धवाभाव- विख्यापिनीं दन्तदीर्घत्व वैरलतो भीषणां कुक्वणत्काक-दीर्घध्वजे स्यन्दने घोट-हीने श्मशान-स्थिते संस्थितां,लम्बमान-स्तनीमेक-हस्ते वृहच्छूर्पमन्यत्र कम्पान्विते वै वरं धारयन्तीं च रुक्षाक्षिणीं वृद्धघोणां प्रकौटिल्य- युग्भ्रूयुगां क्षुत्पिपासार्दितां तामसीं राक्षसीं भीतिदात्रीं परां मुद्रयाऽभद्रया ज्ञापयन्तीं कलिप्रीति मेकान्ततो दर्शयन्ती यथा काऽपि भोक्तुं जगज्जक्षिणी सक्षणा सक्षणा सम्भवे देवमेवासि ।१। किन्तु स्वभक्ताटवीभासनायक्षमा चाक्षमा सर्वथाऽल्पाल्पमप्यम्ब ! कष्टं तदीयं यदीयं मनस्त्वय्यमोघ -प्रभावे सुलग्नं परिद्रष्टुमेव, न चे द्भीषणायामपि स्वाकृतौ किं वरं दर्शयन्ती परिभ्राजसे मानसे ? धूं द्वयी-पूर्वकं ठद्वयान्तं नु ते नाम मन्त्रं जपेत्साधक-श्रेष्ठसदा मारणाकर्षणोच्चाटनाद्याः क्रियाः तस्य सिद्धा भवेयु र्न वै संशयः । त्वं तु सा देवदेवी न या नेकरे शस्त्रमेकं दधानापि दुष्टाशयान् दीर्ण-हृन्मर्मणो भ्रष्टतच्छर्मणो भिन्नहृच्चर्मणो नष्ट-सत्कर्मण स्सम्विधाय ध्रुवं पालस्येव तान् स्वार्चनासङ्गतान् । २।

ये शरण्या मरण्येऽपि च त्वामये ! केवलं भावयन्ति प्रभक्त्यन्युता: ते
ततस्सङ्गतास्तु श्रियाऽनन्यया सर्वथाऽसङ्गतास्तु ह्रिया वा भिया
सम्भवन्त्येद हे धूम—कान्त्या—युते देवि धूमे ! प्रसीद प्रसीदाऽचिरम्
छिन्धि दुष्टं सदा भिन्धि दुष्टं सदा पाहि शिष्टं सदा त्राहि शिष्टं
सदा,देहि मामिष्ट मेकान्तत: सर्वदा,ख्यायसे किं सदा त्वं न वै सर्वदा?
वाह्य मप्यान्तरं नाशय त्वं रिपुं वाह्यमप्यान्तरं नाशय त्वं रिपुं देवि
तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो देवि !
तुभ्यं नम: ।३।

इति धूमावती-दण्डकम्

# बगलामुखीदण्डकम्

जय जय स्तीर्ण-कल्लोल-मालाऽऽकुला ऽपार-गन्धामृताम्भोधिमध्य-स्फुरत्नीत-मणिमण्डपोद्दीप्त-सत्स्वर्णसिंहासनप्रेतवक्षस्समारूढ़ता माव-हन्ती सुपीताम्बराच्छन्न -गौरांग-निर्गच्छदंच्छप्रप्रत-प्रभाजाल-सम्व्याप्त-दशदिग्विभागे ! महादेवि ! पीताम्बरे ! पीतपीताऽखिलालङ्कृति-भ्राजमाने ! समानेतुमानन्द-कन्दं, हृदि स्वीय-पादारुणाम्भोज-सेवा-सनाथीकृतस्वीय-सज्जीवनानां जनानां-प्रभवित-प्रभाजाल-संछादितानाम् प्रपीतैस्सगै गन्धिभिश्चम्पकाद्यैः प्रफुल्लै र्भमद्भृङ्गसङ्गीत-पुष्पैस्समुद्-गुम्फितैर्भ्राजमानां,दधाना गले पीतकम्बु-प्रभे स्त्रे महामालिकां पालिके! पालनीया ऽरिविध्वंसनाय ऽथ ब्रह्मासने। स्वर्णगौराङ्गलास्फुरद्रक्त-राजीव-कल्पेन चैकेन हस्तेन जिह्वामरेस्तूर्णमाकृष्य वैह्वल्यभाजं विधाय द्वितीयेन तं मुद्गराऽऽसक्तहस्तं ह्यशक्तं प्रसक्तं तथापि दृढ़ातिदृढ़ां वज्रकल्पां प्रगुर्वीं गदामंग -सन्दारिणी मेव नो केवलं सर्वथा हारिणीं हारिणी तस्य प्राणस्य चोद्यम्य सम्पात्य सञ्जूर्णयन्ती विभासि प्रभा-सिन्धु कल्पेऽविकल्पे, विकल्पेन हीने ! स्फुरत्स्वर्ण- सत्कुण्डलाभा-सुलाभेन दीव्यत्कपोलद्वयी-भासमानं समानं चलच्चम्पकाभां निजीकृत्य विद्योमानस्य राकाशशाङ्कस्य वा स्वर्णसत्पङ्कस्याननं धारयन्ती, मिलिन्दत्रयी संयुजस्सत्रिनेत्राम् ।२। ह्लीं जपत्यम्ब ! यस्ते प्रबीजं स्मरन्

साधकः पीत—वस्त्रादिभिर्भूषितो वामहस्तस्थ-हारिद्र-सन्मालयऽऽधार-पद्मसंस्थितां त्वां तडिद्रूपिणीं विघ्नबाधा समस्ता समस्ता ध्रुवं तस्य चारिर्यमारगो जायते । ह्लींद्वयी संयुतं स्वाहयाचान्वितं मन्त्रराजं जपेत्ते तु यस्साधको मारणाद्याः समस्ताः क्रियास्साध्यतां तस्य यान्त्यत्र संशीतिचर्चा वृथा । दुष्टवाक्स्तम्भिनि ! क्रूरहृच्चर्विणि ! प्रेतबद्धासने ! स्वर्णसिंहासने सस्थिते ! सर्वदे ! सर्वदेवेश्वरि ! त्राहि मां सत्वरं पाहि मां सत्वरम् गत्वरं कुर्वती तं परं दुष्ट—दुष्टं प्रपुष्टं बहिःस्थं हृदिस्थं शरीरस्थितं वा स्थितं यत्र कुत्रापि वा देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमः । ३ ।

इति बगलामुखी-दण्डकम्

# मातङ्गी दण्डकम्

जय जयोद्दीप्त-सद्रत्न-सिंहासनासीन-पाद-द्वयाम्भोज-सल्लीन-शुश्वेत-माद्यन्मिलिन्दाभनख - राशिजोद्दीप्त-धिक्कारिताशेष—तारागणे देवि ! नीलाश्म—विभ्रान्ति—कृत्कान्ति-सुध्यान—शान्तीकृताशेष—सुध्यायिरागारुणामन्दं—हृत्पङ्कजे ? स्वर्णसत्पञ्जरस्थं शुकं लालयन्ती हसन्ती मुदा मन्दमन्दम् । स्वकर्णस्फुरत्कुण्डलाग्रोल्लसन्मञ्जुमाणिक्य-खण्ड प्रभां निर्मलां वीक्ष्य रागारुणां दाडिमी-बीजजाम, रक्तचञ्चूल्ल-सत्स्वीय मास्यं प्रकुर्वाणमत्यादरा दुन्मुखं तन्मुखे योजयन्ती च तद्रत्नखण्ड सदाऽखण्डलादिस्तुते सत्प्रभामण्डले मण्डपे, स्वर्णरत्नादिभि र्निर्मिते संस्थिते । १ । पक्वबिम्बाधरे ? प्रोल्लसत्कन्धरे ? भव्यमालोल्ल-सत्स्कन्ठ-शोभान्विते । हस्तयोः फुल्लराजीव-युगभावृते ? नीलपद्मप्रभे-णाननेनान्विते ? रक्तपद्मद्वयीरोचने लोचने धारयन्ती, त्रिनेत्रा-न्विता तत्स्तुता । मञ्जुमाणिक्य-वीणाक्वणानन्दिता, वन्दिता सर्वदा ब्रह्मविष्ण्वादिभि र्भासमानै रमानै र्विमानागतै र्नीलवस्त्रावृताङ्गी च सङ्गीतजं हर्षमावेदयन्ती शिरश्चालनै र्मन्द-मन्दं स्फुरद्गन्ध-सैलोल्ल-सत्पूगताम्बूल-पूर्णानना शोभना । २ । शोभमोच्छून-खण्डेन्दु-रत्नावली-प्रस्फुरत्सत्किरीटोल्लसन्मस्तका, देवि मातङ्गिनि ! त्वं चतुर्भिर्भुजैः फुल्ल-संरक्त-राजीव-शोभाधरैस्त्वं हेमादिपाशाङ्कुशाशोभितै स्संयुता वा

भुजाभ्यां स्ववीणां क्वणोल्लापिनीं कुर्वती. तत्प्रवीणा, हसद्यौवना, फुल्लकादम्बकान्तार-वासप्रियाऽऽमोदिवादम्बरी-पानहःस-प्रिया कृत्ति-वासःप्रिया कृत्तिवासःप्रिया दुःखविस्तार-दावाग्निनाश–प्रिया, फुल्लकुन्दोल्लसत्केशपाश—प्रिया, मेघसन्दीप्त—विद्युत्प्रकाश—प्रिया, त्वं मनस्यागता सर्वशोकादिनी, मञ्जुवाचा-लसन्तीच वाग्वादिनी प्रान्तनृत्य न्मयूराऽसि सौदामिनी सुन्दरेन्दीवराभोल्लसाकामिनी, तारलज्जोल्लसत्कामहुँ—पूर्वकं किञ्च फट्स्वाहयाऽन्ते युतं मध्यगं, त्वच्चतुर्थ्यन्तनाम-स्वरूपं मनुं भावयन् साधकः सर्वदा ते सुखी, देवि! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि! तुभ्यं नमः ।

इति मातङ्गी-दण्डकम् ।

# कमला दण्डकम्

जय जगज्जननि ? विस्तारवत्स्वच्छमिष्टाम्बु—सम्पूर्णदुग्धार्ण—बोद्भासि-कासारमध्यस्थ--फुल्लातिसम्फुल्ल--रक्ताब्जराशिस्थ-सर्वाधिक-श्रीसनाथं प्रफुल्लारुणाब्जं समाश्रित्य वद्धासने देवि पद्मे ! समुतापतो विद्रुत-स्वर्णवर्णा ऽखिलाङ्ग-प्रभाजाल-विग्रस्त -सन्त्रस्त मेघादिनाऽऽश्वस्त विश्वरत सद्रोमराजि -प्रदत्ताञ्चलाऽऽच्छन्नरिक्तोदराऽऽवास-विख्यात -कारुण्यसम्पूर्ण -हृत्पङ्कजे ! पङ्कजे ! पङ्कजात -स्फुरद्रक्त-रक्तोत्पल -द्वन्द्व -संशोभि -पादद्वये ! कर्कशत्वेन मत्तेभशुण्डं तथा शैत्यबाहुल्यतः स्वर्णरम्भाभवं स्तम्भभाख्याति यन्नोपमानं ततो जंघयोर्युग्मत श्शोभमाना, स्फुरद्रत्न-काञ्चीकटिः क्षौमवासस्सुरक्तं वसानोपमाशून्य—दीव्यन्नितम्बद्वयी-शोभिता ! रूप -लावण्य-सिन्धूद्गतावर्त-सौन्दर्ययुङ् नाभि -शोभासनाथा, वलींभिस्त्रिभिर्भ्राजमानोदरे ! तस्य सोमस्य भूषामणे देवदेवस्य-सोमस्य वै सोदरे ।१। स्वर्णसच्छिल्प-संशोभि रक्ताञ्चलाच्छन्नमुखचन्द्रदृष्ट्युत्थभीत्युद्गमत्राणसाकांक्षचक्रद्वयीभासमान-स्तनाभोग—सौन्दर्ययुग्वक्षसा भूयसाऽऽलिङ्गितेनाति—विभ्राजमाना त्रिरेखे गले स्वर्णकम्बूपमे लम्बमानामतिस्थूल —मुक्ताकलापावलीं धारयन्ती, वहन्ती दिने कान्ति मच्चन्द्रवन्निश्यनाघ्रात-सम्फुल्ल -रक्ताब्जवद् भासमानं स्मितद्योति विम्बाभदन्तच्छदाभासि, नेत्रद्वयी-कृष्ण-

मुक्ताक्त-शुक्ति-द्वयी-शोभमानं त्रिनेत्रतृतीयाक्षिनिःक्षिप्त, सज्ज्वाल-वैश्वानरप्लुष्ट - खण्डद्वयीभूततैत्प्रपुष्पात्मनासारम -बाणासनौपम्यवद् भ्रूयुगोदभासि,दीव्यत्तमःस्तोमपक्षाष्टमीचन्द्रखण्डाभभालोल्लसद्भ्राजमानं, किरीटस्फुरद्रत्नभूल्लम्वमानोरगीयुग्मकल्पोल्लसत्केशपाशद्वयेना द्वये नाद्वयेनाननं सुस्मितोद्भासि सद्दाडिवीज—शोभद्विजालीयुगालम्वनम् । २ । पार्श्वयोस्ते द्वयोः संस्थिताभ्यां महामत्त-हस्तिद्वयाभ्यां समुत्थापितैश्शुण्डदण्डैं गृहीतैं स्सुधापूरितैं स्स्वर्णकुम्भैर्हित्कुम्भकल्पैस्सुधाधारयाऽनारया सर्वदाऽऽसिच्यमाना विभास्यब्जनाभ —प्रिये ! त्वं प्रसन्ना न कं रङ्करङ्कं परं कर्तुमर्हाजनं राजराजेश्वरं त्वत्कृपापाङ्ग-संगी न भङ्गीभवेदिष्ट —सङ्गस्य यद्भक्तिसङ्गी तव प्रस्फुरद्रक्त-पद्माभहस्तद्वये त्वं दधाना विभास्यब्जयुग्मं शुभम्, सूचयन्ती द्विर्लक्ष्मिं शोभाश्रये भाविनी यत्र कुत्रापि निश्चीयता मेकहस्ते प्रशस्ते वरं बिभ्रती नावरःकोऽपि नाऽसौ भवेद्भक्तिमानेव मेवैकहस्ते ऽपरे त्वं परेऽभीति-धर्त्री प्रहर्त्र्यस्मि भीतेस्सदाऽऽवेदयन्ती विभासीतिमे निश्चयः। तस्य गेहे तु सङ्गीतभङ्गीयुता द्वारदेशे विभात्येव मातङ्गता,किं न तस्यास्तु देवेशि! माङ्गना, भवितमन्तं भवस्यम्ब! मा तंगता, तर्हि किं नाम नो तद्वशेसम्भवे यत्रमातस्तवा ऽपाङ्गपातो भवेत्तस्य कष्टोदगमः सम्प्रयातो भवेत्त्वत्कृपोऽसौजनो लब्धशातो भवेत् । ३ । योहि नेत्वेत्सुखं लौकिकं योगभृत्तत्वभूतादि-शुद्धि विभाव्या ऽचिरम्, मूलपद्मे प्रसुप्तोरगीं त्वामये ! कुण्डलीभूय सम्बोध्य विद्युत्प्रभां, चक्रषट्कं विनि-

भिद्य मूर्ध्नि स्थितं स्वाश्रयं वास्तवं प्राप्य तत्त्वं गताम्, भावयेत्साधको चाध कोऽस्तं व्रजेन्नैव संशीति लेशोऽपि मुक्त्यन्वये ! देवि! सत्सद्म-वासा भव त्वं सदा देवि! हृत्पद्मवासा भव त्वं सदा, देहि शक्तिं परे! देहि भक्तिं परे, देहि भुक्तिं परे ! देहि मुक्तिं परे। कालिका त्वं हि तारा तथा सुन्दरी, त्वं हि भुवनेश्वरी छिन्नमस्ता तथा, भैरवी किञ्च धूमाऽथ बगलामुखी त्वं हि मातङ्गिनी सारदा शारदा, त्वन्मनुं माश्रया संज्ञया विश्रुतं यो जपेत्साधको भक्ति- भावान्वित स्तस्य सिद्धिस्समस्ता करे स्थायिनी याऽणिमाद्या प्रमुक्तिश्च मृत्योः परम्। देवदेवि! प्रशस्ते नमस्ते सदा देवदेवि प्रशस्तं नमस्ते सदा, देव देवि प्रशस्तं यशस्सर्वदा मेऽस्तु शस्तातिशस्ते ! नमस्ते सदा पाहि मां देवि तुभ्यं नमस्सर्वदा त्राहि मां देवि तुभ्यं नमस्सर्वदा, देवि! तुभ्यंनमो देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमो, देवि ! तुभ्यं नमः, । दण्डकं यः पठेद्भक्ति—युक्तो जनस्त्वेत दत्यन्त-सिद्धि-प्रदं सत्वरं तस्य नेष्टाप्ति-बाधा कदाचिद् भवेद् देवदेवी-प्रसादान्न मे संशयः । त्वत्प्रसादादवाप्ता-खिलेनामुनाऽऽनन्दनाम्ना प्रशस्तेन सत्तार्किकैः काव्यकृद्भिश्च विद्भिः कृतं दण्डकं मण्डकं भूमि—खण्डष्य भूयात्सदा । देवदेव्यः परा या हि दिक्सम्मिता स्साधकैस्स्ता महाविद्यया संज्ञिताः दण्डकान्यत्र तासां कृतान्याशुयत्ताद्भवन्तु प्रसन्नास्सदा ता मयि । लखनऊ-विश्वविद्यालये ऽध्यापयन्दर्शनान्यन्य-शास्त्राण्यनेकान्यपि प्राप्तविद्वत्प्रकर्षप्रहर्षः कविर्नैक—सद्ग्रन्थ कर्ताऽनुकर्ता ऽस्म्यहम् ॥ इति कमलादण्डकम्

इति मिथिलामहीमण्डलान्तर्गत--सिहावाडग्रामजन्मना विविध—काशिक—

विद्यालय-नेपाल--दांगजनता--महाविद्यालय, -लखनऊविश्वविद्यालय-प्राच्य—संस्कृत—विभागाचार्य—प्राधान्य—भाजा कवितार्किकाग्रगण्य-सकलदर्शनकानन—सञ्चार—पञ्चानन-श्रीमदानन्दझा शर्म— विदुषा विरचितमेतन्महाविद्यादण्डकम्

समाप्तम् ।

श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ।

२४—४—६७ ईश्वी

# श्यामापञ्चदशी

( १ )

मातस्तवांघ्रिकमले ! मम गच्चित्तवृत्तिः
सर्वं विहाय रमतां भ्रमरीव कञ्जे ।
वाणी तवैव गुणगान– पराऽस्तु नित्यं
दृष्टि. तवाऽऽकृति–सद्दृष्टिपरे भवेताम् ।।

( २ )

त्वां देवि ! भक्त–भयभञ्जन–मात्र-हेतो-
श्चञ्चत्कराल –करबाल–करां विहाय ।
क्वाहं व्रजामि ननु साधनजात–हीनो
दीनस्तथा भुवि, यथाल्पजले हि मीनः ।।

( ३ )

आश्चण्डि! चण्डमदमर्दिनि! मुण्ड— मुण्ड—
मालाधरे ललित—कुण्डल-मण्डिताऽऽस्ये !
पाषण्ड–खण्डिनि ! कृतान्त-कृतान्त-कान्ते!

माम्पाहि पाहि शरणं चरणौ तवैव ।।

( ४ )

नोचेज्जगज्जननि ! पश्यसि मन्दभाग्यं
मामागतं तु शरणेऽरुण — पङ्कजाक्षि !
दुःखं हरेत् कथय को मम दीनबन्धु—
रेका त्वमेव विदिता निगमाऽऽगमेषु ।।

( ५ )

त्वत्पाद—पङ्कज—सराग— पराग—रेणु—
सम्पर्कमाप्य जगदम्ब ! बभूव शूली ।
मृत्युञ्जयोऽथ गरलस्य च पानकर्ता
भर्ताऽखिलस्य जगतोऽधिपति र्महेशः ।।

( ६ )

विष्णु तवैव चरणाऽम्बुज— पूजनेषु—
सन्तोष मेत्य नहि पाणियुगेन मन्ये ।
माता कथं मयि भवेज्झटिति प्रसन्ना
वाञ्छन्निदं ननु चतुर्भुजतां बभार ।।

( ७ )

शेषोऽप्यशेष मुखतामरसं स्वकीयं
व्यापारयन् प्रतिपलं प्रभवेत्समर्थः ।
नो चेत्कथा भवतु का चतुराननस्य
मातस्तवांघ्रियुगल — स्तुति—सम्विधाने ।।

( ८ )

त्वामाहुरागमविदः प्रकृतिं पुराणीं
विद्यां भवक्षतिकरीं श्रुतयो गिरन्ति ।
किन्तु प्रचण्ड—खलदण्ड—विधान—दक्षां
मूर्त्तामिहं तु विकटां करुणां ब्रवीमि ॥

( ९ )

सृष्टि—स्थितिक्षयकरीं जगतां त्रयाणा--
मेका विरञ्चि—हरिशङ्कर-वन्दिताऽसि ।
शक्ताऽसि भक्तजन—भुक्ति—सुमुक्तिदाने
तस्मात्कृपां कुरु सुते न कथं शृणोषि ॥

( १० )

माता शृणोति नहि चेद्रुदितं सुतस्य
दुःखाऽऽकुलस्य भवपाश — शताऽऽवृतस्य ।
कः पालयेद्भुवि लुठन्तमनेक—काला—
द्वालं विलोलकवरीक मतीव—लोलम् ॥

( ११ )

दीव्यन्निशेश—शकले ! धनराजिवर्णेऽ
पर्णे ! श्मशान--निलये ! नरमुण्डदामे !

मुण्डाऽसिधारिणि ! वराऽभयभद्र-हस्ते !
मातः ! प्रसीद तनये सततं नमस्ते ।।

( १२ )

क्रींकारमेव तव नाम जपन्ति देवा
मातस्त्रिकोण —निलये नरमुण्डदामे ।
काञ्चीकृताऽमित करे ! विकटाग्र दंष्ट्रे—
तस्माज्जपाम्यहमपि प्रतिपालय त्वम् ।।

( १३ )

जिह्वां जपाकुसुम—कान्तिमतीं दधाना
मुन्मुक्तकेश -निकरामति-भीषणाऽऽस्याम् ।
ये त्वां भजन्ति निजमानस -पुण्डरीके
तेषां कुतो ननु भविष्यति गर्भवासः ।।

( १४ )

उद्यच्छशाङ्कवदने ! शवदत्त—पादे !
विश्वेश्वरि ! त्रिपुरहारिरते ! महेशि ।
सम्वीक्ष्य मां प्रसभमाः परपापयुक्तं
दूरं गता किमु दया हृदयालये ! ते ।।

( १५ )

आनन्द —विद्वदुदितं परमं पवित्रं
स्तोत्रं पठेद्यदि जनः परभक्ति—युक्तः ।
वाङ् निर्मला सुविपुलं च धनं तथायुः
सत्यं भवेदिह परं पद मन्त—काले ।।

इति कवितार्किकवर्य सकल-दर्शन-कानन-सञ्चार-पञ्चान-श्रीमदानन्द झा न्यायाचार्य-वेदान्तवागीशविरचितायामानन्द—मधुमन्दाकिन्यां ।

श्यामापञ्चदशी

समाप्ता ।

———

# श्रीस्तुतिः

कमलाश्वधाटी

( १ )

दीनोऽस्म्यहं मतिविहीनो यथा त्रपलमीनोऽल्पवारिणि ह्रदे
पद्मासना हृदयपद्माऽऽसना, भवसि सद्मासना नहि कथम्।
शेषे किमम्ब। ननु शेषे ? यतो गर्तविशेषे सुते न करुणा
निद्रां विहाय मुखमुद्रां तथा रचय यद्द्रागभवेन्मम सुखम् ।।

( २ )

किंतत् त्वया विरहितं तत्तयाऽविरहितं यद्विभाति भुवने
चेत्तत्तयाऽविरहि तत्सत्तयाऽपि ननु नो गण्यते सुनियतम्।
यत्सुन्दरं किमपि लोकाऽऽदरं भजति शोकाऽपनोदिचरणे !
त्वत्सत्तयैव नहि तत्सत्तयैवमिति नाऽत्रास्ति कापि विमतिः ।

( ३ )

रत्नाकरत्वमथ रत्नाकराय बहुरत्नाश्रयत्वशतो
जानन्ति ये, किमपि जानन्ति ते किमिति मन्मानसं कथयति।
त्वद्योगतो नहि समुद्योगतो भवति रत्नं कदाऽपि किमपि
त्वामेव देवि ! हरिवामे ! [illegible] ननु तत् ।।

( ४ )

त्वं चिद्विभा सवितरि त्वं प्रभा शशिनि च त्वं शुभा तत-शुभा
त्वं स्वस्सुधाऽसि जनदेहेऽसुधासि समराष्ट्रस्थ चाऽसि वसुधा।
त्वं शारदा बुधमुखे सारदा नतजनेऽपारदा भगवती
मान्या ततोऽस्तु मम काऽन्या प्रदत्त-धनधान्या यथाऽत्र भगवती।

( ५ )

स्वाध्यायिना मनु परध्यायिना मसि निदिध्यासनं श्रुतिमतां
ऋद्धिस्त्वमेव वरसिद्धिस्त्वमेव सुसमृद्ध्यादिना विलसताम्।
सूक्तिस्त्वमेव ननु भुक्तिस्त्वमेव परमुक्तिस्त्वमेव च सतां
हृद्ध्वान्त— नाशनपराऽध्वान्तदाऽखिलमधुध्वंसन - प्रणयिनी ॥

( ६ )

त्वामाश्रये जननि ! कामाश्रये ! न खलु कामाश्रये मम मति
र्यामाश्रये व्रजति साऽमाश्रये, भवति यामाश्रये न सुमतिः।
त्वामिन्दु -सुन्दरतरां बिन्दुसुन्दरतरां नौम्यहं सुरुचिरा—
मम्बाव मामिह न किं वाव गत्वरमिदं सत्वरं तु नितराम् ॥

( ७ )

सच्चित्परे ! सकलचेतोहरे ! ऽकलुषदन्दाभ—सुस्मित—धरे !
कुन्दाभदन्ति ! नगशृंगाभ—दन्तियुग—युग्मोच्च-शुण्ड-निकरैः।

सिक्तेऽमृतैः कनककुम्भस्थितै रुणवस्त्राऽऽवृताङ्गरुचिरे !
कान्त्याऽतितप्तकनकस्य द्रवं ननु विजित्यासि कञ्जचरणा ।।

( ८ )

देवो भवन्नपि ससेवोऽमरैरजित एवोन्नमद्भिरसुरैं
र्युद्धे पराक्रमसमृद्धे सदाऽमित —विवृद्धे श्चतुर्भुजधरः ।
विभ्रद्गदामरि——समुन्मदामरि—— सहस्त्रांगदत्त——विगदां
चक्रं वहन् प्रभव-चक्रं हरन् स्वमपि चक्रं न वेति तव किम् ।।

( ९ )

यस्त्वत्कृपो भवति सत्यं नृपो भवति नश्यत्त्रपः सुकांततः
सद्विग्रहो भवति सद्विग्रहोऽभवति नो दुर्ग्रहोऽस्य भवति ।
मातङ्गता भवतु मातङ्गता भवति सत्संगता च नियतं
लम्बालके ! कुरु कृपां बालकेऽसि जगदम्बा त्वमेव जलजे ! ।।

इति कवितार्किकवर्य-सकलदर्शन-काननसञ्चारपञ्चानन श्रीदाचार्यानन्द झा न्यायाचार्य ——वेदान्तवागीश ———विरचिताया मानन्दमधुमन्दाकिन्यां श्रीस्तुतिः कमलाश्वधाटी समाप्ता ।

[ १ ]

माता भगवती यस्य पिता च बवुनन्दनः ।
चन्द्रशेखरशर्मा तु यस्यासीत्प्रथमो गुरुः ।

[ २ ]

द्वितीय स्तर्क — वागीशः सम्राट्सम्मानभाजनम् ।
फणिभूषण — शर्मोग्रद्यशः — कुमुदवान्धवः ।।

[ ३ ]

स्फुरन्महामहोपाध्यायोपाधिः शिवतां गतः ।
वामाचरण — शर्माऽपीतृतीयः शास्त्रवारिधिः ।

[ ४ ]

सीताऽऽसीत्प्रथमा पत्नी यज्जाताऽभूदरुन्धती ।
पद्मा भवन-पद्मेव द्वितीया यत्सधर्मिणी ।।

[ ५ ]

यतो जातास्त्रयः पुत्रा मृत्युञ्जय—धनञ्जयौ ।
प्रबुद्धौ, बाल एवाऽऽस्ते तृतीयोऽयं रिपुञ्जयः ।।

[ ६ ]

कल्लोलिनी—द्वयमिद —नेनानन्देन निर्मितम् ।
नाना—ग्रन्थ—विनिर्मात्रा भाषासु विविधास्वपि ।
एतत्कल्लोलिनी — तोयं तस्याः पाद्याय जायताम् ।
यत्कारुण्यकण —स्वर्शान्मूको भवति गीष्पतिः ।।



# ऋतुकवित्वम्

## वसन्त—कवित्वम

[ १ ]

पुष्पितः पलाशोभाति वननग-निकुञ्जमध्ये
वीक्ष्य नवकल्पनेयं प्रसरति मनसि यम्
स्तृता रक्तशाटी ननु वाट्यामिह पल्लविन्यां
रतिमहाराज्ञ्याःकामदेव-प्रियतमायाःकिम्।
बलीमुखा एते विचरन्तो मा हरन्त्वथ ता
मितिकृत्वा शिलीमुखानसंख्यान् परिचालयन्
सहकारः सहकारीकृतो येन कोकिलास्यो
लतानर्तक्या हि सममागतो वसन्तोऽयम् ।।

[ २ ]

पुष्पिण्यो लता इमा भान्ति तरुस्कन्धोपरि
पल्लविन्यः प्रसृततमा भ्रमरैरभिशोभिताः।
मलयादागच्छद्भि र्मन्दमन्दवातजातै—
स्सह सम्पर्कादये विचलन्त्यः सुरभिताः ।

कामिन्य:कामहेति-निहता हृदि वसन्तकाले
प्रपलायित -माना ननु सत्यो धैर्यरहिता:
सन्तु रता विपरीतं पतिता: स्वाम्यङ्गकेषु
नूनमुपदिशन्त्य इव दिशि दिशि सुललिता:।

[ ३ ]

कोऽसौ जड़ोवा ननु जङ्गमो वा यत्र नहि
लग्नः प्रभावो भाति कामवर—नृपते:
मन्त्री वसन्तोऽयं समीर—सुसमीरणेन
सूचयन्निवाज्ञामसौ मन्त्रादक्ष: नृपते: ।
नगा इमे नगजाता लता अपि विचालनेन
शिरसो विभावयन्ति दिशि दिशि निजसुरते-
रस्तित्वं त्वंन कथं पल्लवित: शुष्क शुष्क!
स्थाणुमिति गर्हयति कोकिल: स्वविरुते: ।

[ ४ ]

योग: संयोजो विषय— वियोगे कथं
सम्भावना तस्य जटाधारिन् !ब्रूहि चपलम्
योगी जटाभिर्यदि सजटा वटा एते—
योगिनो भवेयुर्नो कथं तर्हि सरलम् ।
कथ्यते त्वयैवं यदि मैवमथ ब्रूयास्त्वं
योगी खलु निष्कर्मा विषयात्सुविरते—
हन्त! ! तर्हि न चला: स्यु. किमेते नोऽचलास्तेब्रूहि
योगिन इति योगिनं ब्रवीति पिकी स्वरुते: ।।

[ ५ ]

सहकारःससकारी लसितो निजमञ्जरीभिः
पुष्पिण्यः पल्लविन्यो जाता लता इमाः
चन्द्रः सहसोऽयं तारकिता यामिन्यः
शुद्ध—सलिलहासिन्यो नद्यः श्रितसुषमाः।
विस्मयकारि नो नो यत् सुस्मिता वसन्ते समे
कामनृपमन्त्रिणोऽस्य जानन्तो गरिमाः
विस्मयो महानेष पल्लवितः पुष्पितोऽयं
सर्वकटु निम्बोऽपीति धन्योऽस्य महिमा ॥

[ ६ ]

दाड़मी कुसुमितेयं पत्नी पलाशस्येव
नव -पल्लव -वसनवती राजते ससिन्दूरा
उदितं फलस्तनमभिवीक्ष्य यत्र शुक-युवको
रचयत्यावासं येन भूमात्सा ह्यविदूरा।
जम्वीयंपि गर्विणीयं भाति निजकुसुमोपरि
निपतन्मिलिन्दैरये! यथा काऽपि जितशूरा
शेफालिके! किं त्वं नो समागते वसन्तेऽप्यद्य
लोक्यसे प्रमोदवती घृतशुभ्रश्रुतिपूरा ॥

[ ७ ]

आम्रमञ्जरीभ्यो रसचोषणतःस्निग्धकण्ठो
जायते मधुर-भाषी त्वत्तोऽपि कालोऽयम्
पश्य काक ! तव गेहे पोषणमुपेतः पिकः
प्राप्ते वसन्ते सोऽद्य समुपेतः कालोऽयम्।

तत् त्वं न सहकारं सहकारिणमागृह्णन्
भवसि मिष्ट-भाषी कुतो ब्रूहि हन्त मिष्टं
कृष्णतया भ्राता मे भवसीति वच्मि खग!
नै वान्य—मधुपोऽहं ब्रूयां यदशिष्टम् ॥

[ ८ ]

प्रौढ़े वसन्ते ननु काम—जन्यवासनातो
भवति खल्ववस्था काऽविनियन्त्रितमनसाम्
इच्छावगन्तुस्ति यदिचेदिह पश्य सखे !
लावङ्गीं लतामिमां समुपाश्रितपनसाम् ।
लज्जां सुविहायैव मबलाजन—सुलभामपि
त्यक्तच्छदवसनतया जातां नग्न—नग्नां
लम्बिते फलेह्यस्य लग्नं निजाङ्गमथ
मन्यमानां बहुलतरं प्रेम—सिन्धुमग्नाम् ॥

[ ९ ]

तालि! सुसमुन्नतिमेत्य पश्यसि प्रियं ताल्नं
कामिनी सती त्वं किं मधुमासाऽऽगमनात्
सोऽपि च विलोवयते विलोयन्नथैवं त्वां
दीर्घादपि दीर्घत्वं प्रभजन्नविनमनात् ।
पश्यतो द्वयो रेव मेव किं रसक्षरणं
जायतेऽथ कार्श्यं यतो मांसमस्ति न मनाक्
देहयो द्वयोः पाण्डुतेय माच्छन्ना ननु
मुखयो रतिभीतिर्मे क्षयदोषाऽऽकलनात् ॥

[ १० ]

खर्जूरि ! मञ्जर्या गर्भे तव रेणवो ये
सत्यं धन्यधन्यास्ते कुत एव मिति चेत्
शृणु सत्वं भाग्यवती भासि पुष्ट-मिष्टरसे
हेतुं नात्र जानेऽहं ब्रवीष्येवं यदि चेत् ।
आगते वसन्ते यो वियोगग्रस्तमानिनीनां
पाण्डिमा कपोले भाति ललिततरो दृष्टः
सोऽयं किं न भाति तत्र रेणुषु तव मञ्जर्याः
सत्यमेवं धन्यवादो भूयात् कथं दुष्टः ।।

[ ११ ]

फलं वहन् विल्व! त्वं कस्मान्नहि धन्यधन्यो
वचनीयो विवेचकेन वर्त्तुलं च पीनम्
पथिका इमे पश्यन्तो यदये! न विस्मरन्तो
लोक्यन्ते स्वर्णघट मञ्चले निलीनम् ।
सत्यं वरमन्त्रिणो वसन्तस्यास्य लक्ष्मीवृक्ष!
पल्लवितः सखा भासि मीनचिह्ननृपतेः
त्वत्त्रिशूलपत्राहतिशूली किं न जगदीशो
विजितो मकरध्वजेन गिरिजापद-विनतेः।।

] १२ ]

तिन्तिण्यसि पक्वशुष्क-फलभारं धारयन्ती
जटाजूटमिव किमद्य वसन—पत्रहीना
आगते वसन्ते कामसामन्ते वनान्ते ह्यत्र
विटपानतिमत्यो भान्ति का न लताःपीनाः

पश्य जलकेलिन्यो नलिन्यो मन्दमन्द वातैः
प्रचलन्त्यः शिक्षयन्ति मुग्ध-मुग्धा ललनाः
एवमक्षिपातैस्ते भवेयु र्वशवर्तमानाः
ध्रुवमेव येऽत्यन्तं तरुणास्साभिमानाः ॥

[ १३ ]

चित्रं नवमालिके ! वसन्तमवसन्तमपि
समुपेत्य कथमत्र पश्यस्यकुसुमिता
केवलं त्वमेका याऽतिमानिनीव फाल्गुनेऽस्मिन्
समुपागतवत्यये ! विलोक्यसे न मुदिता ।
ज्ञातमां पुरोहितस्य वाक्यादस्य कोकिलस्य
चैत्र एव केवल मनुरागस्ते सुविदितः
किन्त्वेकव्रत मेतत् स्थास्यति किं तव ब्रूहि
मधुलिट्-समूहो यदा भविता हन्त पतितः

[ १४ ]

पाटल ! मुखं ते पाटलत्वं कुतो गतमेतत्
जातोऽनुरागः किं माधव्याऽस्य लतया
क्रोधोऽथवा जातस्ते प्रफुल्ले चम्पकेऽस्मिन्नये!
यदभिमुखमारब्धा प्रेम्णा गति र्दि तया ।
आं ज्ञातं पूर्णतया हेतुर्मुख—पाटलत्वे
वायुनाऽऽहतस्त्वं मुखे सत्यमभिमत्या
पूर्णं सौन्दर्यं तत् कुतस्त्वया लब्धु महं
मास्ये यत्तस्या भाति नूनं वस्तुगत्या ।।

[ १५ ]

शाल्मलिन्! पलाशादपि धारयन् हि रक्तरक्तं
तालादप्युन्नतिम न परिणद्धः पुष्पम्
सत्यं लोहितोष्णीषः कामराज-पुरुष इव
भासि तेन कदली त्वां मन्यते तुरुष्कम् ।
नो चेद्वराकीयं कथमेवं कम्पवती
भीता शुकानेतानथ लुब्धानगणयन्ती
पुष्पानुरूपं फलमादित्सूनये ब्रूहि
भ्रान्ततमान् कूजतोऽपि बाष्पं पातयन्ती ॥

[ १६ ]

कुटोजोटजानां परितस्त्वं धृतपीत—पुष्पो
राजसे स्वबन्धुबान्धवानां गणैर्युक्तः
प्रायाते वसन्ते देवसामन्ते वनान्ते ह्यत्र
लब्धुमर्हः कोऽविरही मोदै यों न युक्तः ।
ये ये, किन्तु पथिका वै प्रवासेऽपि स्थितावा ये
तेषां हार्दपिण्डखण्डविततः परिदृश्यताम्
वृक्षः काञ्चनारोऽयं सर्वाङ्गें रक्त-रक्तो
विरहोऽस्मिनकामराज्ये पातकमितिबुध्यताम् ॥

इति वसन्तकवित्वम्

# अथ ग्रीष्मकवित्वम्

( १ )

याते वसन्ते कामसामन्ते प्रचण्डतरः
चण्डिका-कराल—करवाल इव दीप्तिमान्
आगतः कुतोऽयमृतु ग्रीष्मो हन्त मर्तुकामाः
सन्तप्ता लता इमा उदितोऽयं गभस्तिमान् ।
सञ्चितश्चिताग्निर्यथा ज्वलन्नगनिकुञ्ज इह
हा हा हेति निगदन् खगसमूहोऽयं गतिमान्
दृश्यते प्रभाते गतवाते शुष्क—पुष्पपाते
ह्याकाशोऽयमरुणिम्ना परिव्याप्तोऽस्मितिमान् ।

[ २ ]

ग्रीष्मो वपुष्मानिव भूत्वान्तरिक्षमध्ये
प्रसृमरकरै श्शैत्यभवनं वनं नाशयन्
वारितोहि चलता पवमानेनाति-कोपयुतो
ज्वलति प्रचण्डतर स्तमपीहाति-तापयन् ।
ताड़िना पदाघातै र्विततावनीयं या
शैत्यवीजरक्षणे प्रवृत्ताऽऽसीत्सदया
नाम्नोऽनुरूपं कूपमापतिताः शैत्यकणा
मन्य इमे प्राण—रक्षणाय हन्त सभयाः ।

[ ३ ]

गगनमध्यमायातो ज्वलति प्रचण्डतरः
सूर्य श्शत्रुनाशोद्यत —भारत—प्रभाववत्
चैनीमथ सेनामविनीतां विद्रावयितु
तेजस्विना श्शीतलता चलिता आर्यधीरवत् ।

चाऊ एन लाई -वाति-सन्तप्तः कुक्कुरोयं
ललज्जिह्वमास्यं स्वकं व्यादत्तेऽनुपलम्
माओत्सुंगकल्पो गतजल्पो ऽभवद्धिमदिवसो
दर्पस्संसारे कस्य तिष्ठत्यनवरतम् ।।

[ ४ ]

हालिकोऽसौ केदारादागच्छन् मार्गमध्ये
युध्यन् सूर्यतापैरये ! सोढुमसमर्थः
निस्त्राणयोः पदयोरतितापं भूमिरेणूना
मग्नित्वं प्राप्तवता मनुभूतानर्थः ।
भबितुं वराहो यदा न्यपतत् पल्वले हा हन्त
तप्ततैलकल्पैर्जलै रल्पैस्तत्र दग्धः
सर्वाङ्गे करोतु किं प्रतीक्षितो वृषभाभ्यां
गन्तुमप्रवृत्ताभ्यामभवत्ताप —मुग्धः।।

[ ५ ]

भूमिः पदाघातैरथ धर्मांशोरत्यन्तं
दीर्घमुष्णनिःश्वासं मुञ्चति यं बहुलम्
दूरात्कम्पमानोऽसौ विलोक्यते तरङ्गमयो
वारिप्रवाह इव समुद्गतोऽनुपलम् ।
सन्तप्ता तृषाऽत्यन्तं दीनतमा सारङ्गी
ह्यङ्गीकुर्वतीयं धावनमद्य चपलम्
कम्पिताङ्गयष्टिस्तापमालया निगडिताङ्गी
प्राणांस्त्यजन्ती वक्ति जीवनमतिचपलम् ।।

[ ६ ]

सजटो वटोऽयं व्याप्य भूभागं नन्वलघुं
शाखाबाहुजालैः स्सुविशालैः पल्लवालकैः
राजते महर्षिरिव कश्चित् स्थितःपररक्षा-
व्रत मेव हि लक्ष्यभूतं गृह्णन् वृतो बालकैः।
महिषो रोमन्थं कुर्वंचिद्वितनोतिच्छायायां
गावः पीतवत्साः सन्ति हृष्टा अत्यन्तम्
रचितोत्तरीयस्रस्तरा एते ननु पथिकाः
सुखसुप्ता राजन्ते विनमैनं सन्तम् ॥

[ ७ ]

विस्तीर्णस्तरुर्नायं पर्कट्याश्छत्र मिदं
प्रकृतेरये विस्तीर्णं दृढ़दण्डशाखम्
अस्याधः स्थितानां नो चण्डभानुसन्तापो
भूयादिति दयावत्या स्थापितमभाषम् ।
चण्डतापतप्ता इमे परिहाय परभावं
छायाया मस्याध स्त्वेकत स्तुरंगाः
वाहनीकृता एते महिषा ननु पुरो भान्ति
यात्रिणो विदिग्गा अपि बहवः कृतसंगाः ॥

[ ८ ]

कूप ! जलभूपस्त्वं दृष्टौ मम सागरो नो
यस्य तटे निवसन्तोऽपि पातुमसमर्थाः
क्षारं जलं तस्य ननु, निकटे तवागच्छन्तो
गच्छन्तश्च नेच्छया जलं पीत्वा सुसमर्थाः ।

लोक्यन्ते,स्वकुक्षौ यदा न भवति पयस्ते हन्त
समुपादाय भूगर्भा दर्थिनं प्रकुरुषे
सार्थमये कौत्सं महाराजो रघु:कृतवान् यथा
दृश्या क्व परोपकृतिरेतादृशी पुरुषे ॥

[ ९ ]

पल्वल!पयस्ते शुष्क मुपरिष्टात्सूर्यतापै-
रन्त: किन्त्विदामीमपि रक्षसि तद्गूढम्
रपरिगया शुष्कतया प्रतार्य करं सवितुस्तस्य
तोयकर—ग्रहणायाऽथ समुपेतं मूढम् ।
सत्यमसि दयालु र्नाकरिष्यस्त्वं चेदेवं
हा हा सन्तप्ता इमे महिषा: किमकरिष्यन
यूथो वराहाणां वैष रवितापत्राणै:
सविषै हंता: किं ब्रूहि नैवाऽभविष्यन् ॥

[ १० ]

यद्यपि तड़ाग ! जलभारेणासि सम्पूर्ण:
सुमहद्गभीरतया—चान्त: खलु शीतल:
नलिकावतो नालात्तत: पङ्करसमागृह्णन्
पङ्कजमप्यमितं भाति भूषित—महीतल: ।
तस्मात्त्वं कृथा मा सखे खेदं वच्मि सत्यतरं
किन्तु क्व शोभा साद्य चण्डे विभावसौ
श्लिष्यत्परागे तप्तकनक—द्रव— कल्पजले
शकनोतूपवेष्टुमपि मानसज: किमिवासौ ॥

[ ११ ]

पर्वततरंगिणि ! गच्छसि त्वं भूरिवेगवती
प्रोच्छलदत्यच्छं जलं दधती तूलराशिवत्
चण्डादपि चण्डतरः प्रभवतु गभस्तिमाली
तापयितुं शक्तिः किन्तु नैव स्फुलिङ्गवत् ।
मन्ये ततःक्रुद्धोऽसौ सकलकलं वारयन्त्याः
प्रोच्चे तटे ते हन्ति हा हा पिपासया
गच्छतो जनानेतां स्तापितान् स्वकीयैः करैः
ये वै विचेष्टन्ते प्राणानां जिहासया ॥

[ १२ ]

पर्वतस्य शृगात्त्वं प्रपात ! ननु पश्यन्नधः
शुष्क-शुष्क-केदारेषु शुष्यतोहि कलमान्
जात एवं सदयो यत् प्राणानप्यविगणयन्
प्रपतन्नसि वेगात्त्वं कीदृशोऽसि मतिमान् ।
नूनं जडोऽसौ नो जडस्त्वं यो जडं ब्रूते
त्वामेवंविध मन्तःकरुण मुदिद्धीर्षा-
रूपतयेच्छा हि दया चेतनगाऽचेतने नो
हा हा विषमयी चण्डभानो र्भानुवर्षा ॥

[ १३ ]

सत्यं प्रपाऽसि त्वं प्रपाऽतः कथ्यसे हि जनैः
देवि प्रपे ! तुभ्यं शतशस्ततो नमनम्—
यदि नाऽभविष्यस्त्वं मार्गेऽस्मिन्नल्पजले
अभविष्यन्नु कथं तर्हि करिष्यन्त्यत्र गमनम् ।

व्यथते ललाटन्तपश्चण्डकरः केवलं नो
गुल्फावधि मज्जयन्तो रेणवोप्यकरुणाः
पथिकां स्तुदन्तो विनिपातयन्तो मोहयन्तो
यात्रा विघ्नकारिणोऽमी जायन्तेऽग्निकणाः॥

[ १४ ]

छाये ! त्वं माया ध्रुवं प्रभवन्त्यमूर्ता यतो
दृश्यसे सुमूर्तेव ग्रीष्मे लोभजननी
चण्डभानुतापेभ्यो व्यथितानिमान् पथिकानथ
क्रोड़े विनिधाय किञ्चित् पासि यथा जननी।
अतसी-पुष्पाभां त्वां प्रणम्य किन्तु याचे देवि!
प्रकटी कुरु निश्चलनामितेऽन्यथा तु मृताः
तेजो दुर्निरूपं यदा धत्से तदा ह्यमृतत्वं
त्वद्योगात्तास्मादिमे प्रभवेयुरमृताः॥

[ १५ ]

ग्रीष्म ! त्वं चण्डालः श्वपचः सन्देहो नात्र
भुवने कान्तारे यतो ज्वालितवानग्निम्
यस्मादमाना विस्फुलिङ्गविस्फुरन्तो हन्त
लग्ना दिगङ्गनाना मम्बरेषु नूनम्।
चण्डःप्रकाशस्ततो विततो यो ह्यातपोऽयम्
तन्मध्यपतितं नाद्य किं नाम दग्धम्
पश्य पश्य चाऊवन्नीच ? स्वनीचतायाः
कृत्यमिदं कृत्याया वन्यं गजं दग्धम्॥

[ १६ ]

दीर्घदीर्घलोह—दृढ़—शलाके ह्याधारीकृत्य
बहु·लौहचक्रपादा किमियं काऽपि योगिनी?
कम्पयन्ती पार्श्वगतं भूभागं धावमाना
ग्रीष्ममध्याह्नेऽप्येति किन्त्वव्यथायोगिनी।
अथवाऽजगरीयं किं वह्निमुखी विषवाष्पं
फूत्कुर्वत्याकाशे वेगादेति भीषणा?
उदरे वहन्ती मादृशानेव पातयित्वा
भुक्तान् बहूनेतान् हन्त महतीयं रोषणा।।

[ १७ ]

यात्रे! त्वं पात्रे गच्छ विद्धिमामपात्रमेव
शक्तो नाहमस्मि गन्तुमेतादृशे ग्रीष्मे
वह्निकणानाकाशो वर्षत्ययं निष्करुणो
वरुणः कार्पण्यमाप्तः कोगच्छद्भीष्मे।
उक्तं किं केनेदं देशोपर्याक्रमणं
दुष्ट—चीनकर्तृक मित्यस्मि तर्हि शक्तः
भीम इव सगदोऽहं सगदोनह्यगदोऽहं
चलितः खलु भवितुमद्य चीन—रक्तरक्तः।

[ १८ [

रामस्य माया, क्वचिदातपो हि तीव्रतरः
छाया क्वचिद् गाढ़ेति प्रसिद्धिर्ननु लौकिकी
सुस्पष्टमनुभवितुं शक्यते ऋतावत्र
ग्रीष्मे तापभीतो [illegible] केवला च हेतुकी।

केन प्रेरितोऽभूत्पत्रमानो रथो यत्रारुह्य
वारिवाहखण्डोऽलघुरागतोस्त्यकस्मात्——
मध्ये गन्तृ—सूर्ययो स्समाच्छन्ने दृष्टी द्रष्टु-
रस्य सुखमनुभूतं गन्त्रा ब्रूहि यस्मात् ।।

[ १९ ]

ग्रीष्मः किं भीष्मोऽयं चीनो दुर्योधनः किं
सीमा— भूमिपाञ्चालीं नग्नामकारयत्
दुश्शासनद्वाराऽसौ प्रभवत्याग्नेयपात
श्चेदेवं भारतेऽत्र युक्तं किमकारयत् ।
नेदं दूरमास्ते दर्पहारी घनः श्यामोऽपि
त्वरितमेव वायुयान मारुह्याऽऽगन्ता
समुदेष्यति गाण्डीवं भारते हि विजयश्री—
रागन्त्री गीतोक्त्या हतः स्यान्न हन्ता ।।

[ २० ]

ऋतावत्र रात्रिरल्पकाया तत्र निद्राऽल्पा
स्वेद—प्रवाहायाद्य देहयष्टिः कुल्या
मशकानां गानं तत्तटे काललय—युक्तं
मत्कुणा स्समेधन्ते तल्पे धृतशल्याः ।
भास्करः कृतान्तो वाति वायुरग्निकणबहुलो
भूभागः काल———व्यालमालाभियुक्तः
कोनामाग्रहिष्यन्नाम कथयास्य सहकार !
त्वञ्चेन्नाभविष्यः पक्वफलभारै र्युक्तः ।।

[ २१ ]

पनस ! त्वं फलभारैः पक्वैरपक्वैरपि
सुमहद्भिर्विनीतो नो भवस्यन्य—वृक्षवत् ।
वर्षत्वग्निकणजालं भास्करः प्रचण्डतरो
म्लानमेकं पत्रमपि तव नान्यवृक्षवत् ।
कस्त्वदन्य ईदृशोऽस्मिन् भुवने निष्पुष्पफलो
दृष्टः, केनापि तत उत्तम स्त्वमुक्तः
एकफलपूर्णभोक्षगमः कोऽथ भोक्तॄणां
बीजव्यञ्जनत्वादप्यभिमानो युक्तः ॥

[ २२ ]

भवत्वग्निवृष्टिरत्र हालिका न भीतास्ततो
वीरा वृषा नो वैषां कर्तव्यानिष्ठाः
वर्षाया अभावद्धोः कालाद्दृढां क्षेत्रभूमि
दारयन्ति फालाग्रै रेकाग्रता ऽऽविष्टाः ।
भक्ष्यपेयदानायाऽऽगताभिः कर्षकीभिराभिः
समवचिते तृणजाले कुर्वन् बीजवपनम्
प्रार्थयते कर्षकोऽयं भगवन्तं वारिवाहं
सफलं कुरु ननु मे श्रमं देहि वन मवनम् ॥

[ २३ ]

आम्राणा मुद्यानानि सफलान्यद्य रक्षितानि
रक्षार्थं नियुक्तैर्जनै रेभि र्नन्वचौरैः
फलभोगाय मार्गमपि नैजं नैजनवधूय
बहुभिरानच्छद्भिर्भारितानि चौरैः ।

कर्षकदम्पतीनामपि छायामात्र—लोभानां
प्रभवत्यभावो नाऽत्र, चारकाः पशूनां
बहवो बहुक्रीड़नका, युवतीः शुष्कपत्रचय-
व्याजवतीः पश्यतां नो लज्जा काऽपि यूनाम् ॥

[ २४ ]

वर्षाकल्लोलिनीय मुच्छलत्तरंगवती
साभिमाना केदरान् सुबहून् व्याप्य मत्ता
दृष्टा या कदाचित् सैव तोयात्मक-घनाभावे
दृश्यते मृतेवेयं खातमात्र—सत्ता ।
सर्वेषां धनानामेकरूपैव गतिरेषा
धनिभिस्ततो नो धनगौरवं विधेयम्
तिष्ठन् कथञ्चित्तटकोटरे गभीरे हन्त
भेको वक्ति वचनं मम सर्वैं रवधेयम् ॥

( २५ )

पर्वतस्य शृंगादय मुत्तिष्ठन् वनमहिषः
पीवरो गरीयानयं शूकरो वा हृष्टः
नसिकासमुल्लसच्छृंगो गण्डकोवाऽयं
शुण्डादण्डमुत्कुर्वन् वारणो वा दृष्टः ।
चलता पवमानेनाऽथ हं हो खे विततिमाप्तो
गर्जन्नसौ मूत्रमामुञ्चन्निव जातः
तस्माद्धरित्र्यां सन्तप्तायां सकण्टकायां
मन्ये बभूवायं प्रथमो बिन्दुपातः ॥

इति ऋतुकवित्वे ग्रीष्मकवित्वम् ।

# अथ वर्षा--कवित्वम्

( १ )

सागरः स्वपत्नीना माननेभ्यः शुष्केभ्यो
ग्रीष्माऽऽक्रान्तिभवगत्य जातोऽतिक्रुद्धः
वेगात्तदङ्गाद्बाष्प —राशि रुत्पतितोऽभू
दाकाशो ग्रहणायाऽथ तप्तः सन्नद्धः ।
घनतामुपेतोऽसौ घननाम्ना व्यपदिष्टो
वायुना ऽतितप्तेनाऽथ शीततायै विधृतः
क्रियया रासायनिक्या वारुणास्त्रत्व माप्तो
यत्पाताद्ग्रीष्मोऽयं ग्रीष्मोऽचलत् प्रहृतः ॥

( २ )

चपले ! चापल्यं मुञ्च तिष्ठ-तिष्ठ क्षणमेकं
कथमेवं ब्रूहि त्वं यासि प्रपलायिता?
क्षणदेयं स्वत एवाऽक्षणदा मद्विधानां कृते
प्रियया वियुक्तानां पथिकानां सदाऽहिता ।
घनघटया चाऽऽततया द्विगुणं कालिमानमाप्ता
प्राणहरा राक्षसीव हा हा हन्त बाधते
गच्छ गच्छ किं वा नो कार्यं त्वत्तोऽपि मम
प्राविड्सिलतया इवाऽऽकृति रच किं न ते ॥

( ३ )

इन्द्रधनु रुदितं कुतो भावि ननु युद्धं किं
कर्णयो र्विदारकोऽयं भीष्मो रवश्च कुतः?
भीतो मृग-शावकोऽसौ मातुरुदराद्यो गत
उत्कर्णस्सर्व—दिक्षु क्षिपन्नक्षि चकितः।
आं ज्ञातं मानिनीनां मानदुर्गभङ्गार्थं
महती नन्वनीकिनीयं प्रहिता कामविभुना
जातो वज्रपातो हन्त चलितं विद्युदसिलतया
धीरतया सममेव चलिता गुरुमदना ॥

( ४ )

हरिताम्बरेयं प्रविराजते मनोज्ञ —वेषा
तृणराशि—प्रच्छन्ना महतीय मवनी
हारि—हारीतरुत—सौभाग्य मसहमानां
केकारवैर्नृत्यन्तीं मयूरीं वक्ति सुवनी।
सारिकाभिरामरव—व्याजं स्वीकृत्य नून—
मिन्द्र—गोपपुञ्जं पश्य पद्मरागरुचिरं
तत्र तत्र गुञ्जापुञ्जकल्पं—वह्निमवगत्य
शीतार्त्तैः कपिपोतैः सेवितमतिरुचिरम् ॥

( ५ )

व्याप्ति र्जलस्येय मेतादृशी भातितरां
स्वर्णाम्बराच्छन्नाऽखिलाङ्गाऽभूत्तरुणी—
अवनी, वनी-केशाढ्या वायुव्यजनानिलेय-
मुदितारुणसिन्दूरा प्रभाते भव्य—रमणी।

मध्याह्ने स्वच्छ -सूर्य-किरणै रालिङ्गिताङ्गा
रजताम्बराच्छन्ना पुनश्चञ्चच्चाकचिक्या
सायं विनिर्मिततार-तमःकृष्ण—शाटिकया
आवृताऽङ्गा चन्द्रमुखी वर्णयितुमशक्या ॥

( ६ )

क्षुद्रा इमा नद्यो या आसन् विरिक्तोदरा
ग्रीष्मे तापभीष्मे पदैर्दलिताङ्ग्यो जनानाम्
क्वचिद्दीर्णगर्भाः प्रचरद्भि र्महिषाद्यैस्ततैः
क्रीडदजबालाः क्वचिद्विड्भूमिर्लोकानाम् ।
खेलन्त्यस्ता एव प्राविडङ्ग—सङ्गवत्यः
पूर्णोदरा लोक्यन्ते प्रचलन्मीन —नयनाः
भुग्न -तटवृक्ष -शाखा-बाहु-स्पर्शसुखवत्यो
धीवरवरैरपि हन्त !! दुर्लभपारनयनाः॥

( ७ )

रक्षकौ तटावेतौ याावास्तां तोयस्य
जलद्रविणाल्पतायामये प्रोन्नतयेदानीं
क्षुद्रयाहि नद्यैतया स्वयमेव भज्येते
वेगवत्तरङ्गाघातदात्मा व्याप्तु मवनीम् ।
क्षौद्र्यं क्षुद्राणामिद मनुभूतादग्रहणं
शिक्षायाः, कारणेन येन महद्दुःखम्
वाध्यतया प्रभवत्यनुभवनीयं ध्रुवमेव
शरदाऽऽगम एव स्यात् किं नान्तः शुष्कम्॥

( ८ )

पथिक! क्व चलितस्त्वं कीदृशोऽसि मूर्खवरः

किं ते गृहे नास्ति रमणीया रमणी ?

पश्यसि कथं नो ? त्वादृशाना मेव गतिभङ्गं

साधयितु मभवदियं व्याप्तजला धरणी ।

सफलो जनानां नो जड़कर्तृक उपदेश

इति त्वया सत्यं कृतं कथनं जनानां

जड़तामयी सृष्टिरद्य काले जड़ोदयस्य

हृष्टेयमवनी ततो हृष्टता वनानाम् ॥

[ ९ ]

कर्षकोऽति हर्षयुतो वर्षति वारिवाहे बहु

जलविन्दु —पातहीने तार्णगृहे. प्रियया

भाविधान्य —लाभकथां कुर्वन्नजसमथ

बीक्षते मुखमस्या अलसः कृषिक्रियया ।

कश्चिदेवमन्यः क्वचित् कश्चित् क्षेत्रजलसरणं

सञ्चिन्त्य द्रुतमेव चलितः सोत्साहः

गृह्णन् कुदारकं सुदारकवत् स्कन्धदेशे

भीमायां रजन्यामेव दयितासार्थवाहः ॥

[ १० ]

वायु र्झञ्झात्मकोऽसौ चालयन् वनालीमति

तालीदललम्बमानं नीड़ं दोलायितं

कुर्वन् भीतखग—पोताधिष्ठतमथ चण्डवेगो

वाति, यस्य सम्पर्का दूतौ वीणायितम् ।

सत्वरोऽपि मुखकमलं द्रष्टुं प्रियायाः पुन
र्गन्तुं न शक्तोऽसौ पथिको वर्षाऽऽकुलः
गायन् सहधर्मिण्या मुदितः किन्तु कर्षकोऽसा
वविगणयन् कष्टशतं धान्यरोपणाऽऽकुलः ॥

[ ११ ]

चलो नायमितिकृत्वा कथ्यतेऽचलो लौकैः
सत्यमसावचलः किन्तु लक्ष्यतेऽद्य चलितः
हरितां तर्वाली मिमां वायुवेगवशचलितां
चञ्चुकतया गृह्य यतो भाति नगो ललितः।
पश्य घनमालेयं विद्युच्चम्पकेन रम्या
तुङ्ग—शृङ्ग—मस्तकाधोलम्बना विराजते
अभिरामा मुग्धा इमा अभवन् सत्यमेव मुग्धाः
पश्यन्त्यो ऋतुशोभां मतिरेषा किं न ते?॥

[ १२ ]

जम्बूनिकुञ्जोऽयं कृष्णः पक्वफलभारैः
छायां यस्य गृहणतीयं कालिन्दीव राजते
याऽऽसीदशब्दं प्रचलन्ती दीनकामिनीव
मन्दमन्दं गिरिनदिका सुखजननी सा न ते?
पूर्णा श्यामधनयोगा चञ्चत्तरंगभंगा
लक्ष्यीकृत्य गंगामति त्वरितं याति सागरं
निपतत्फलं कीरोऽसौ मधुकरमवगत्य तत्र
द्रष्टुं नोपसर्पतीति मोदकरं हि परम् ॥

[ १३ ]

कोकिल! कलं नो कथं कुरुषे घनवासरेऽस्मिन्
कालिमा घनस्यायं मोदप्रदो न कथम् ?
कालस्त्वं कालोऽयं कालो मुनिमोहकरः
काली मधुपाली ततो दिनमेतदकथम्।
आं ज्ञातं सहकारः सहकारी न मञ्जर्या
रसपानात्कन्ठरोधं दूरीकरोत्यसौ
इच्छन्नपि तत् त्वमद्य वक्तुं वक्षि नान्य-पुष्ट!
रुष्टो वा भेकः कथं दुष्टो रटत्यसौ ?।।

[ १४ ]

सफलः कदम्बाद्य ! भासि श्याम –घनयोगात्
निष्फलो य आसीरये ग्रीष्मे मृत—प्रायः
पत्रैरतिहरितैं र्हारीतै रिवाच्छन्नतया
हारिहरितकञ्चुकेन पूर्णाऽऽवृतकायः ।
पर्वतः, फलान्येतानि सुशिखानि ननु तेऽद्य
मिलित—पीतरक्त—परिमण्डलानि राजन्ते
प्रकृते लघु-कन्दुका हि नो किमत्र कथय त्व
मथवा सुवर्त्तुलाः प्रदीपा इव भासन्ते ।।

[ १५ ]

नृत्यन्मयूर ! त्वं भासि स्वमयूर्या सह
विस्तारयन् पक्षान् स्वांश्चन्द्रकरत्न-खचितान्
केकारवैस्स्वीयैरये गायन्नथ नीलकण्ठ !
विन्दून् किं समुद्वीक्ष्य धारायन्त्ररचितान् ।

बुद्धेराहार्यथा: प्रयोजन मिदानीं नो
सोयमायातो धनः श्यामोऽसौ ललितः
विहसन् विद्युतो मिषेण पवनं रथमारुह्या
ऽऽकाशं पश्य पश्य सखे! पुरोवातश्चलितः॥

[ १६ ]

झिन्टि! त्वं विज्ञतमा भासि यम—योगिनीव
तिष्ठन्ती विल एव बाह्यस्थितिं जानीषे
नोचेत्प्राविड़ागमे समेत्य तव निकटे कः
तदुपागम—सूचनां ददाति त्वां सुमनीषे।
कुम्भकस्याभ्यास श्चेन्नो ते कथं दीर्घकाल
पर्यन्तमविरामं गायस्ययि! गीतम्
आरोहावरोहौ यत्र नैव तानपूरक इव
श्रुत्वा तद्धृदयं कस्य भवति न वै प्रीतम्॥

[ १७ ]

भेक! त्वं गुणग्राही कीदृशोऽसि वच्मि कति?
तिष्ठसि कुत्र मासान् बहून् कोऽपि नैव जानीते
योगमभ्यस्यन् भूमि—गर्भे निश्छिद्रे कथं
यापयसि कालं रुद्ध्वा भवति वाणी ते।
श्यामाद् घनात्प्रथम एव जाते तोयविन्दुपाते
हाऽऽश्चर्यं बहवेत दागच्छसि कस्मात्
स्थानादये फुल्लगण्डो वेदपाठमिव कुर्वन्
पुष्टादपि पुष्टवपुः सत्कार्यस्तस्मात्॥

[ १८ ]

सर्प सर्प सर्प ! त्वं कालेऽस्मिन् घनकाले
श्लिष्यत्तमाले वनमाले कलितानिले
क्षोभः कुतश्शैघ्र्यं कुतो विषशान्तिदायिनि विषे
व्याप्ते, धरित्र्यामिह मार्गे सलिलाऽऽविले ।
अभव दाविल्नं ते किं विलमप्यथ वारिपूर्णं
वारिपूर्णमभवदिति चलितस्तत स्तूर्णम्
कालियकुल—कमलस्त्वमायातं घनं श्यामं
घनश्यामं मत्वा द्रष्टुमथवाऽऽगतःपूर्णम् ।।

[ १९ ]

केतकि! प्रफुल्ला त्वं भासि घनवासरेऽस्मिन्
कामक्रकचालीं दत्तशाणामथ विभ्रती
मधुपो मधुपानगोष्ठीं बिरचयितुं प्रवृत्तास्त्वयि
कौसुमरजोलेपा द्धवलोऽभून्मधुव्रती ।
कन्टके हि पक्षावस्य लग्नावाकुलीभूते
चक्षुषी, घनः श्यामो दृष्ट्वा वै समाकुलम्
मन्ये जल-बिन्दुपात मारेभे यद्वशतो
नष्टं कष्ट मस्य सर्वं लेभेऽसौ स्वकं बलम् ।।

[ २० [

दूर्वे ! परिहासं नो करोम्यद्य सत्यमेव
मारकतीं द्वितिमेनां दधती विराजसे
हरिताम्बराभूदियमवनी त्वामुपेत्य किं नो
प्राप्ते घनकालेऽस्मिन् जनहृष्टिस्ते वशे ।

त्वञ्चेन्नाभविष्य स्तर्हि पशवोऽभविश्यन्मृताः
परिणति मुपेता त्वं दुग्धं दधि वा घृतम्
छिन्नाप्युच्छिन्ना नो भवसीति प्रसिद्धमेव
गणपत्यति-मोद-हेतो! रूपं ते ततोऽमृतम्॥

[ २१ ]

मुदिता वन—श्रेणी लक्ष्यते घनागमेन
रूपमद्यापरमेव सर्वैरवलोक्यते—
एणी क्वचिद्रोमन्थं कुरुते निमीलिताक्षी
स्वैणेन स्निग्ध—दृष्ट्या या वै विलोक्यते।
यूथो वराहाणा मेति पल्वलादत्र
यन्मुखतः शालूकावलीयं भाति गलिता
कलयन् कमलिनीं यः पंक्तेरग्रगामी गज
आसां सर्वहस्तिनीना मत्रैवास्ति गजता॥

[ २२ ]

प्रोषित--पतिकानामिमे नयने जलदत्वमाप्ते
वितते नभस्यस्मिन् जलदे समायाते
क्वचिद्रज-पातो वज्रपातो हृद्येव तासां
असिलतिका—चपलेयं प्रेयस्यसमायाने।
वारिविन्दु—पातस्तप्ततैल—विन्दुपात इव
यमजेव यामिनीयं भीमाऽवभासते
हा हा वराकीयं प्रकरोतु कमुपायं
जगतो ननु प्राणोऽपि प्राणहरो भासते।

[ २३ ]

मालति ! प्रफुल्ला त्वं वृक्षाग्रादधोमुखी
लम्बमाना चित्रचित्रशाटिकेव राजसे
जल—विन्दवो ये ननु लग्नाः शुभ्रशुभ्रा इमे
मुक्ताभ्यो जटितास्ततो बाहुल्येन राजसे
मन्ये विनतासि त्वमवनीं प्रत्यत्यन्तं
मूलं यतस्तस्यां सालवालं तद्विराजते
शाखाच्छदच्छत्रं भिद्य जलदोऽमृतविन्दुजातैः
रजतद्रव—सिक्तं यत्प्रकुर्वन्निव राजते ॥

[ २४ ]

मशक ! त्वं गातुमयेऽत्यन्तं कर्णमूलमेत्य
श्रोतुमप्रवृत्ते जने प्रविशसि निश्शङ्कम्
मन्ये भंक्तुमावरणं कर्णगतं श्रोतुस्तस्य
गेयमाकुर्वन् घनं घनीभूतं पङ्कम् ।
उचितमिदं जातिवृद्धिः प्रभवत्यात्यन्तिकी ते
यस्याऽऽगममात्रादसौ गेयस्त्वया न कथम्
नासि कृतहन्ता तथा सन्ति यथा बहवो जना
लोकेऽस्मिन्नलोके हन्त लोकवृत्तमकथम् ॥

[ २५ [

सूरण ! रणं कृत्वा पृथ्युत्तरच्छदेन
कृत्वा तद्भेदनमये ! भासि त्वमुल्लसितः
कन्दस्तेऽभिनन्द्यो भृशं पूर्वरूपनाशमेत्य
प्रतिवर्षं वर्धत एव दृष्टान्तोऽवसितः ।

तस्मात्त्वं नियते विकासे ननु मानवानामये
स्मृत्याऽवान्तरया दृढ़—संस्कारोत्पत्तौ
जनयन्नसि मोदं मुखकाषकता मावहन्न—
प्यर्शहानिकारितया नयनस्याऽऽसत्तौ ।।

[ २६ [

मण्डूकान्नमत्यन्तं मोदप्रदं कर्षकाणां
तस्मात्ते लग्ना बहुक्षेत्रे तदारोपणे—
आरोपितेभ्यो ननु बीजाङ्कुरेभ्यस्तस्य
भरितानि सुबहूनीमानि केदाराणि तद्गणे ।
प्रचलति विवादः पूर्ववर्षादत्र वर्षे ध्रुव-
मधिका सस्यसम्पत्ति नूनं प्रभाविनी
वितता घनावल्यम्बरे या तमश्शोभामयी
निम्नावतारवत्था व्याप्ता तयेवाऽवनी ।।

[ २७ ]

आशुधान्यरोपणविलग्ना इमा काश्चित् स्त्रियो
गीतमतिललितं गायन्त्यो भान्ति ललिताः
काश्चित्त्वारोपणावसान मेत्य मुदिता इमा
दोलान्दोलनानाभिमुख्यो विधुमुख्यश्चलिताः।
वृद्धाभिर्वृद्धा इमे गृहकार्य-चिन्ताऽऽकुला
स्तिष्ठन्तु मार्गे कथं त्वरयाऽविप्रयुक्ताः
एते युवानः किन्तु दोलामान्दोल्यमानां
ताभि विहाय कथं गन्तुं स्युः प्रवृत्ताः ।।



इति ऋतुकवित्वे वर्षाकवित्वम् ।

# शरत्कवित्वम्

[ १ ]

सरिदियमतिसुन्दरी सरस्यां शुद्ध-सलिलायां
स्नात्वेवाति—शुद्धदेहा संसारे समागता
यस्याः समागमस्य सम्भावनयैव नूनं
वर्षा हृतहर्षा गता शीघ्रं मलिनाऽऽतता ।
तिष्ठतु वराकी कथमस्यां शुभ्राम्बरायां
मत्रागतायामये ! सततं मलिनाम्बरा
लौकिकी हि नीतिरियं स्त्रीणां सलज्जाना
मपमानं सहते नैव प्रभवन्त्यपि साऽम्बरा ॥

[ २ ]

मैत्री -करुणादि परिकर्मवतां यमिनामथ
यादृक् सुनिर्मलमन्त रत्यन्तं जायते
शरदीह तादृगेव परितो ननु लोकजाल
रन्तर्जलाशायाना मेषामवलोक्यते ।
सलिलस्यागाधताया मप्येते पीनमीना
विचरन्तोऽवलोक्यन्ते गतिमन्तोऽदीनाः
केवलं न, सूचिका इवात्यन्तं सूक्ष्मकाया
अप्येते क्रीडनं कलयन्तोऽपीनाः ॥

[ ३ ]

कमलङ्करोति यस्मादमलं ततः कमलमिति
गीयते सुनिश्चित मिदं पुष्पं ततः कमलम्
भ्रमरान् कृष्णपुत्तलिकाकलान् यतोऽत्रत्तोहृदि
श्वेतमरुणं वाऽसंख्य मेतदृतौ तरलम् ।
कल्पना सहृदयाना मन्तस्ततः प्रस्फुरति
प्रोच्चैरियमति रुचिरा सरसी सहस्राक्षा
निर्गत—निमेषा सती पश्यतीव सौन्दर्यं
हंसधवलाम्बरस्य नियतं साकांक्षा ।।

[ ४ ]

कुमुदं जनयदिदं पुष्पमत्र कुमुदं ननु
कथ्यते जनैर्नूनं कथमेव मिति चेत् ।
याभिरथ सरसीभिस्सरसीकृतेयं धरा
सविभा तमस्विन्यां सापीहेति कोनावेत् ।
कुमुदोऽथवा चन्द्रश्चेत् कौमुद्या विकिरणतो
नेदं कथं भूयात्तदाऽऽकर्षणत स्तस्याः
शुभ्राम्बरा जाता इमास्सर्वा दिग्योषितोहि
दुग्धधारा धौता वा सम्पर्काद्यस्याः ।।

[ ५ ]

कुसुमानि शारद्यानि फुल्लानि दिशि दिश्यद्य
महिषासुर—मर्दिदन्या वितताय सपर्यायै
वाद्यान्यपि विविधान्यथ वाद्यन्ते तत्र तत्र
भक्तैर्नरैर्नृत्यद्भि वंदद्भिर्नम आयोयै ।

ग्राम्या इमा बाला बद्धमाला घृतहस्ततया
लोकगीत गानाऽऽसक्तचित्ता यान्ति मन्दिरं
काश्चन तास्तस्मात्तथाऽऽगच्छन्त्यो दृष्टदेव्य
आलोकयन्त्येता अयेऽन्योन्यं मुखचन्दिरम्।

[ ६ ]

चन्द्रमल्लिकाना मिह पुष्पाणां राशिरयं
विविध—प्रकाराणां शोभते समन्तात्
त्रोटनं विना नो यत्पातः कथञ्चिदपि
जायत इति सुस्पष्टं हरितात्ताद्वृन्तात् ।
माला यदीयाऽतिवृहती सुसम्पादा
कुरुते सुसज्जान् बहून् स्तम्भानपि महतः
गन्धी यत्पत्ररसो मन्दोष्णः क्रियते यदि
कर्णकूपपाती हन्ति तत्पीडामभितः ॥

[ ७ ]

यद्वै गुलमेहदीति नाम्ना प्रसिद्धं क्वचि—
न्मिथिलायां त्यूरेति प्रसिद्धं बहुवर्णकम्
सर्वाल्परक्तं सर्वबहुरक्त सुश्वेतं
चित्रमेकदलकं बहुदलकं भद्रपर्णकम् ।
पक्वं यत्फलं बीजमात्रसारं स्वत एव हि
प्रस्फुटत् सशब्दं बीजवपनं तथा कुरुते
जातवर्षं वर्षान्तर—प्राप्तौ पुनर्नापेक्षां
बीजाद्यवरोपणस्य हं हो तत्करुते ॥

[ ८ ]

जातं निरभ्रतयाऽऽकशं नन्वतिरम्यं
रजसा दिगङ्गनाऽपि यस्मादभूद्रहिता
कथमित्थमिति चेत्ते चित्ते जिज्ञासा सखे!
सुस्पष्टं तर्हि कथा श्रव्या मयाऽभिहिता।
प्रकृते रजक्या खलु वर्षया विधौतेऽम्बरे
नद्यां नीरजस्कायां जाताया मचिरम्
भूम्यां रसगर्भायां कालस्यानाकलना
दभवद्दिगङ्गनाऽपि तादृग्विभ्रा रुचिरम् ॥

[ ९ ]

कोजागर—पूर्णिमेय मागता प्रसिद्धतरा
धनदा श्रीः केन नाद्य सायं प्रपूज्यते
नारिकेल—तोयं नारिकेलमथ ताम्बूलं
पायशं मखानीयं देव्यर्पितं भुज्यते !
रात्रौ जागरणं द्यूतरणरणकेन सार्धं
बहुभिः श्रीकामैरिह साग्रहं प्रगृह्यते
विश्वासस्सुदृढो जनमानसे प्ररूढतर
एवं विधाने नैव द्रारिद्र्यै र्दह्यते ॥

[ १० ]

हं हो कार्तिकीयममा जाता समा मालिकया
ऽऽलोकाना मसंख्यानां प्रतिगेहं ज्वलताम्
आसन्नाऽऽहूता ये महालये पितरस्तान्।
दर्शयतां स्वर्गपथ मुल्का माभ्रमयताम्

श्रेणीयं लोकानामाबालवृद्ध नां
हर्षोत्फुल्ल—लोचनाना मेणीदृशां दीपान्
मन्दान् ज्वालयन्तीनां काञ्चनभोल्लसन्तीनां
दृष्टिहृष्टि वृष्टि-दात्री तमसः प्रतीपान् ।।

[ ११ ]

दीपान्वितायामत्र भुव्यपि दिवीवाऽभा
दीपा असंख्या यतः प्रज्वलन्ति परितः
आकाशे, विकीर्णमौक्तिकानीव नक्षत्राणि
तत्राऽऽकाश—गंगा चेदत्रापि सरितः।
रात्रौ विहायसि ततो वैमानिका गच्छन्तो
नोर्ध्वाधः—प्रतिपत्तिं कर्तुं नन्वीशते
श्रीरपि विष्णुपदताभ्रमं कृत्वा समागता किं
पूज्या तव पूजनाय वर्णय त्वमीश! ते।।

[ १२ ]

गृह एव लोकानां नाद्य कमलालयाया
वासो ननु भाति यतस्सर्वा भूः सुशोभिता
गायद्भिः क्षेत्रपालै रक्षितानि सुक्षेत्राणि
धान्यधनवन्त्येतानि नद्यो जल-शोभिताः।
पक्वकार्तिकीयलघु—धान्यकर्तनार्थं गृहात्
चलिता इमा गेहिन्यो हसन्त्यः सुप्रसाधना
गायन्त्यो लोकगीत मत्यन्तं मनोहारि
हसदिन्दुमुख्यः कुञ्जलवनी—प्रसाधनाः ।।

[ १३ ]

देवोत्थान मेतत्समुपागतं प्रसिद्धतरं
देवश्शेषशायी यत्र विजह्द्योग—निद्र:
उत्तिष्ठति सहृदेवैर्व्रतिनो ह्याबाल—वृद्धा
इक्षुदण्डमण्डप मारोप्य भक्त्यदरिद्र:।
दीर्घ-काष्ठ-पीठे दीपमालयाऽतिरम्ये खलु
गृहपोऽसौ पूजापरो ध्यायन् विराजते
व्रह्मेन्द्ररुद्रै रभिनन्द्यमान इति मन्त्रं
प्रपठन् जन: सर्वस्तत्र बोधयन् सुराजते ।।

[ १४ ]

तारकितस्याम्बरस्य शोभा ननु वीक्षणीया
नीले विस्तीर्णे पटे मुक्ता यथा ग्रथिता:,
एता असंख्या यत्र सैकतकणाभा अपि
बह्व्य:सन्ति लध्व्यस्ततो नाम्ना न वै प्रथिता:।
तारा हारितारद्युतिमत्य: स्थौल्ययोगितया।
अन्या: किन्तु काश्चनेमा विज्ञानां प्रविदिता:
क्षीणादपि क्षीणा धन्यधन्या नन्वरुन्धती सा
दृष्टो दीर्घजीवनस्य बोधिनी सुविदिता ।।

[ १५ ]

चन्द्रोऽसौ चन्द्रिकया विलसन्निव शोभमानो
लोक्यते हि लोकैरसौ गगने ननूद्याने
यत्राकाश गंगा—सा विलसति सुदीर्घिकेव
सिकताभानि भानीमानि तस्या: खल्वमाने

कथयन्ति केचिन्नो सुधांशु र्व्योमगङ्गायां
फुल्लं शैत्ययोगीद मरविन्दं रुचिरम्
किञ्च कालिमा नो कालिमानमाकलयन्नलि
स्तस्मात्तत्र रसमग्नो लोक्यो भाति 'सुचिरम्।।

[ १६ ]

हंसा:पुण्यसलिला अपि कलिला:कल्लोलिनीस्ता
वार्षिक-रजोयोगा दभिवीक्ष्यासन् विगताः
मानस मुत्तरस्यां दिशि ये वै ते पुनरप्यत्र
गति-शिक्षा-ग्रहणायेव युवतीभ्य स्समेताः।
इष्टादप्यधिकतरं लाभं मन्यमाना इमे
लोक्यन्ते लोकैः किं नन्वति—प्रमुदिताः
लाभोऽसौ कस्तेषा मिति चेज्जिज्ञासा ते
शिक्षयन्ति वक्त्र मणि—नूपुरस्वैर्यन्ताः ।।

[ १७ ]

केतकि ! प्रफुल्ला त्वं ककुचत्वमादधती
या गर्विताऽऽसीरये मधुपदेच्छच्छेदात्
शुष्का धूलिभरिता हरिताऽऽयते स्ववृक्षाकक्षे
निवससि सा त्यक्त्वेवाद्य खिन्ना हृद्भेदात् ।
हं हो तथापि तव दुर्वृत्तिर्नैव गता
वाय्वाऽऽहृतरेणून् क्षिप्य पथिकाक्षिषु नूनम्
नोचितेयमाहत—हृति रीदृश्यविनीते !
जानासि न किं मां स्वता दयिताहैन्यदूनम्

[ १८ ]

वर्षा—विगत्या गतिरागतिश्च पथिकानां
जलबाधाहीनाऽभूदत्र न संशीतिः
भरितस्नेहहृत्पात्रे ज्वलति प्रचण्डतरा
दीपशा मुपेता किन्तु बन्धुजन-प्रीतिः।
अश्रु—जलवर्तिलघुमीना विव लोचने द्वे
लोचनयोः शीघ्रं पुरोभाग मेत्य तनुतः
पथरोधं बारम्बार मन्धकार—वैतत्वं
जायते हि गन्तुरस्तु बाधः ततो न कुतः॥

[ १९ ]

विस्तीर्णदूर्वाऽवनी प्रातश्शीत—कणिकाभि-
र्व्याप्ता विभातितरां सौरभा—विलसिता
इन्द्रनीलभूमिर्लघु—मुक्ताजाल—घटिततया
महतीयं सुन्दरीति सूर्यकरकलिता।
क्रमशो जायमानः कणशोषोऽसौ लक्ष्यो नो
प्रभवति तथैव यथा विहितं ननु चौर्यं
निभृततरं कस्यांचन पानहृत—चेतनायां
कामिना विधीमानं निश्शब्दं क्रौर्यम्।

[ २० ]

स्वात्यामस्तु मौक्तिकाना मुद्गमोऽथ शुक्तिकायां
प्राप्तिः किन्तु शरदो, हि तेषां सुविधीयते
शुक्ती श्चिन्वन्त्य श्शशिमुख्यश्चूर्णनिर्माणाय
समवाप्नुवन्ति भव्यताभाति हि गेयैः।

शौक्तिकानि मौक्तिकानि सुलभान्यद्य नान्यानि
लोकाना मुक्तिरियं सत्यभूता नूनम्
सायं विकीर्णानीत्र प्रकृतेर्नत्वंगनाया
अम्बरे सुदीप्तानि वक्ति मनो दूनम् ॥

[ २१ ]

जीवन—निवासिन्यपि जीवनं न धन्यभूतं
मौक्तिकगर्भत्वं विना मनुते शुक्तिकेयं किम्
दिवसे दृढबद्धसम्पुटा या चण्डतापतप्ते
नोचेच्चन्द्र -दर्शन एव विवृतोदङ्मुखीयं किम् ।
सत्यं कामिनी सा कामिनी किं पुत्ररत्नं या
धत्ते निजगर्भे नो ऽ लङ्कृत्यलंकारं
पश्चात्तत्तिष्ठतु वा गच्छतु वा यत्र तत्र
जननी सती नैवोपैति किञ्चिदपि विकारम्॥

[ २२ ]

शोषो नो कुत्राऽपि सरसाः सपल्लवाश्च
सर्वा इमा लतिका यतोऽव्यवधानं वर्षायाः
उपरिष्टात्तृणाग्रान्निम्नवर्त्ति तृणाक्रमा —
न्नगगा तोय-बिन्दु-धारा वनगायास्सहर्षायाः
मौक्तिकीव माला नीरजस्का प्रविभातितरां
पुलकीकृत्य यामेते पिपासाऽऽक्लान्त-मानसाः
पीतामृता इव पुनः पीतामृता एते
प्रभवन्ति तुङ्ग—शृंगलंघनाप्त-साहसाः ॥

[ २३ ]

पुष्पितसर्षपाढ्यतया पीनाम्बरा जाता मही
मधुपा इमे मधुपानाय निश्चलतया विष्टाः
राजन्ते हरिताल—भूमौ सुपीतायां
पतित-पक्व-जम्बू-फल-तुल्या अति हृष्टाः।
एते ननु शुका रक्तचञ्चू-पुटा-अर्जुनवृक्ष—
शाखा-पुष्पपुञ्जस्था स्त्रिरङ्गा इवालोक्यन्ते
भारतस्य भारतस्य लोकैर्ध्वजा उन्नमिता
मन्दं मन्दमावहद्भिः पवनै ये विचाल्यन्ते।।

[ २४ ]

कुन्दः प्रफुल्लोऽयं भाति हारि-हरितैर्दलै—
रत्यन्तं सन्नद्धो मरकतमये वृक्षे
समुपाध्यस्तपुष्पत्व--मौक्तिकनिकरातिखचित-
तथा नील—सन्ततकीर्ण-तार-द्यु—सदृक्षे।
भ्रमरा इमे भ्रमरा ननु सत्यमेव भ्रमरा यत
स्तेषामिह मकरन्दपानादृत—लोभानां
सङ्ख्या मारकतो वृक्षो नात्र संगतानि
ऋक्षाणीति मतिरेषा कुसुमान्यभ्रशोभानाम्।

[ २५ ]

धन्या शेफालिके! त्वं का! वै लता त्वत्सदृशी
वृक्षो वा कोऽपि पुष्पभारै रानमितः
नारङ्गत्वचिमासि पुष्पं यदि लाञ्छना
मत्यन्तं स्फुटितानां प्रभवेत्सुप्रथितः।

तद्वर्षा कस्माच्चिन्नात्युच्चहरिताच्चेद्भवेत्
वृक्षादथ रात्रावति—मधुरामोद—शालिनी
तर्हि तुल्यता ते कथंकथमपि तत्र सम्भविनी
भूयादिति विद्धयसि ततो महती भाग्यशालिनी।।

[ २६ ]

सौन्दर्यं वनलक्ष्म्याः कीदृङ् ननु ऋतावत्र
काशव्याप्तिमाप्ता मही धौताम्बरस्पर्धिनी
पुलिनानि दर्शयन्ति नद्यः स्वजघनानीव
वृक्षच्छदच्छिद्राद्वीक्षमाणस्यातिगर्धिनी ।
तानि शशलाञ्छनस्य हसतः प्रकाशच्छला
ल्लवली-प्रियङ्गु लोध्रप्रभृतीनां मनोगतिः
शोभां निजकालयोगभोगभवां ख्यापयतां
विज्ञापन मातनुते शृंगाराऽऽकुला मतिः।।

[ २७ ]

कुसुमिततमा एते विलसन्ति सप्तच्छदा
गजदानाऽऽमोदा दिक्षु येभ्यस्तताः पवनैः
--भूमेरसारस्यात्सूर्य—किरणस्याप्राचुर्यात्
शैत्यबीज मौष्ण्यै र्नाऽऽलावि तीक्ष्णलवनैः।
केवलं पशूनां मानवानामेव केवलं वा
परिपूर्ति रुदरस्याद्य साधु न सम्पद्यते
सर्वेषा मुदरदरी परिपूर्णा खाद्यजातैः
ऋतु रग्र्यो नान्य स्तत एवं विधो लभ्यते।।

[ २८ ]

कुसुमाकरोऽहं खलु मध्ये ऋतूनामिति
यद्यपि सुगीतमेव मर्जुन —सारथिना
गीतायां तस्या मर्जुनं वै या निमित्तीकृत्य
रणभुवि सुगीता सर्वमानवेभ्यो वशिना।
तद्वाक्योपक्रम एव—किन्तु मार्गशीर्षोह—
मित्युक्तं तेनैव महता कंसारिणा
ज्ञातः किं पराक्रमो न विबुधानामुपक्रमस्य
व्यक्ताऽतो महत्ताऽस्यैव तस्माच्चक्रधारिणा॥

[ २९ ]

पश्येम शरदश्शतमह मित्याशीर्वैदिकी या
सा किं ननु केषामपि विदुषामविदिता
शरदो न ऋत्वन्तरापेक्षिक मथ माहात्म्यं
चेतसा किं वैतन्यं गच्छेन्नवै वितता।
अस्तु सर्वजीवम्भरताया वसन्तेऽपि
सस्य—सम्पत्या स्थिति स्तुलना मेतस्याः
शक्या न दातुं सखे ! तत्र ननु बुद्धिमता
शरत्सुन्दरीयं ततो हेतो स्ततः शस्या॥

[ ३० ]

शशकानां पंक्तिरियं स्फटिकोऽपलानामिव
समुपाश्रित्य लघ्वीं गतिं सर्वतो बिचरताम्
जनयत्यमन्द मानन्दं पश्यतां नो किं
प्रचितस्वच्छतूलखण्ड-तुल्याऽऽभया लसताम्

पारावताना मप्याकाशे बालवृद्ध—
यूनां समां पंक्ति मेतां मण्डल्या सुचरता—
मुपवेश स्सममेव वितताम्ने नूनं खले
धत्ते सौन्दर्यं कथं सखे! साधु वीक्ष्यताम् ।।

[ ३१ ]

आयसीं सुतीक्ष्णां कुञ्जलवनीं नालयन्त्यस्त्विमा
विष्टा एव गच्छन्त्यः क्षेत्रे खलूल्लसिते
कर्तयन्ति धान्यमूलं गायन्त्य स्सुस्वरमये!
सवितुः स्वर्णवर्णकिरयोगान्मन्दहसिते ।
वात्यपि मातरिस्वनि मन्द-मन्द मान्दोलयति
प्रचुरान्न-विनयानतानि पक्वतराणि सस्यानि
वारम्बारमेता अपनयन्ति वामकरकमलैः
स्वेदामितविन्दूनिति हृतहिमानि कमलानि।।

[ ३२ ]

महत श्शकटस्योपरि धान्य राशे राधानाय
दूरीकृतधान्यैरथ पलालैः कृतरज्जवः
रचयन्ति धान्यमारा नमितान् सह धर्मपत्न्या
रज्जो राकर्षण-जानुपातयोश्च यो जवः ।
निःस्तन सुस्तनयो र्द्वयो र्वक्षसः प्रकंपकारी
तं नूनमवलोक्य सुस्मित —मुखमकलाः
एते इमाश्चान्येऽन्याः स्मृत्वा संगजनितसुखं
श्रमिका बहिस्समला अपि नूनमन्तरमलाः

[ ३३ ]

अबला नाममात्रतोहि सबला: किन्तु कर्मणैता,
बद्धग्रन्थिधान्य——भार माराद्धारयन्त्य:
सत्यो गजगामिन्योऽपि परिहाय गजगमनं
तौरङ्गीं चपलां गतिं भाराद्धारयन्त्य: ।
दक्षिण-करेणोर्ध्वं शिरोन्यस्त—धान्य-भारं
संयम्य वामकरं चलिताञ्चलानयन
संलग्नं कुर्वन्त्य: सलज्जा: श्रमशालिन्य:
श्रमिकाणां बध्वो यान्ति पश्य त्वरां गमने।।

[ ३४ ]

भारस्याधिक्यमस्ति शकटेऽत्र यद्यपि ननु
किन्तु नास्ति बाधा काऽपि धान्यभारानयमे
वृषभाविमौ पीनावति दृढ़ावति सुदर्शनीयौ
स्कन्धन्यस्त-शकट-युवौ गरुड़ावुभौ गमने।
ग्राम्यो भवन्नप्ययं मार्गो यतो हसतीव
नागरमपि मार्गं ततं पीचिकया रचितं
चालकोऽप्यबालकोऽय मुपविष्टो लोकगीत-
गानाऽऽसक्तचित्तो भाति लोल-कविरचितम्।।

[ ३५ ]

बाला: केचनेमे शिलवृत्त्या प्रगृहीत-धान्या
भर्जिततण्डुलानां क्रये मुदिता दत्तचित्ता:
अन्ये ते केचन सुपक्व- भूमिकन्द मिष्ट—
मिष्टमभिपश्य तस्य क्रयिणो धान्यवित्ता:।

लड्डुकानि पृथुकानां गुड़योग—रचितानि
पृथुका इमे केचन वीक्ष्य रोदितुं प्रवृत्ताः
सदयाःस्वस्वमातरःप्रकुर्वन्त्वथ किमये नाम
शिथिलयन्ति धान्याञ्चल—ग्रन्थि मप्रमत्ताः॥

इति ऋतुकवित्वे शरत्कवित्वम् ।

—०—

# शिशिरकवित्वम्

[ १ ]

आयातो हेमन्तोऽम्बराद्वाल—रूपधारी
शिशिरोऽसौ परो नेति मन्तव्यं विबुध:
बाल इव युवकत्वमेत्य पुनर्वृद्धत्वं
प्रोप्नोतीति विदितमेव रूपैर्युतो विविधै: ।
ह्रासवृद्धिभावे किन्तु सत्यपि शरीरांशे
भिन्नत्वं स्वीक्रियते नैव हि बुध्दिमद्भि:
पञ्चैव ऋतवोऽत: प्रोक्तोपनिषदैकत्र
युक्ति रसतौ नादृयते कैरिहाथ सद्भि: ॥

[ २ ]

आवृतिमङ्गानामये शीतोदयादिच्छन्तो
बाला इमे बालिकाश्च तद्विधेच्छावत्य:
त्यक्तुमङ्कं पङ्कमथ ग्रीष्मोदये मीना यथा
पीना अपीना अपि सन्तस्तथा सत्य: ।
नेच्छन्तीति जानन्त्यो धनिन्य: प्रसविन्य इमा:
सूक्ष्मोर्णापट —घटिताङ्गरक्षा-क्रयतत्परा:
अधनिन्यो हन्त किन्तु कुर्वन्तूपायं कं
भावयन्ति जीर्णपटखण्डा इमे निर्जरा: ॥

[ ३ ]

रात्रिरल्प—कायाऽभूद्या पूर्वं सेदानीं
वर्धितुमारेभे पुनः क्षीणा काऽपि बालिका
सद्वैद्यादप्यौषध मुत्तमं सुसेवमाना
पथ्यमश्नन्ती पैन्यवृद्धु न्मुखी कालिका।
दुर्दिनमुपेतं पुनर्दुर्दिन मनुपेतमपि
दिनमेतत् क्षैण्यगामि यस्मादवलोक्यते
मित्रव्यसनाप्तौ पुंस्त्वमावहतोऽपीह दुःखं
पुंस्त्वेन हीनस्यास्य न कथं तल्लोक्यते ?

[ ४ ]

हिमकणिका-बाहुल्यस्य वृध्द्युन्मुखत्ववशतः
क्रमशः संछन्नतामवाप्तवतः तेजसः
कणिका या जलकणिकाः समादाय मिश्रीभूय
प्रोर्द्धं वंगच्छन्त्यो भान्ति दृष्टौ सचेतसः।
प्रथिता स्ता एव वाष्पनाम्ना खलु लोकगोष्ठ्यां
ऋतावत्रेतस्ततोहि शक्यं तद्दर्शनम्
बाला धूमत्वं यत्र मन्यमाना अनुमिमते
जलमेतद्वह्नि मदिति कृत्वा परार्शनम्॥

[ ५ ]

अत्यन्तं हरिताभि र्दूर्वाभिराच्छन्ना
भासतेतरा मेषा विज्ञता भरतावनी
भयभव्य—हरिताम्बर—परीधान मादधती
सुबहुल्लावण्या यथाऽऽपण्या काऽपि यावनी।

प्रातर्हीरकणिका इव कणिका इमाश्शीतस्य
ग्रथिता विभान्तितरा मथवा ननु नैवम्
चन्द्ररतयामिन्या अङ्गेभ्यो गलिता इमे
नूनं स्वेदविन्दव इति ज्ञेयं सत्य—सत्यम् ॥

[ ६ ]

नैतावत्कालं तूलराशिः समवलोक्यतेस्म
कणशो विशीर्णतामुपेतो दिशि सन्ततः
स्फाटिकाः कुतस्त्याः परमाणव इमे हन्त
समुपागत्य किम्वैते विराजन्ते समन्ततः ।
आं ज्ञातं तत्त्व मिदं नैव किन्त्वेव मिदं
विमलं सुसूक्ष्मं नन्वम्वरं सुशोभनं
निहितं प्रत्यङ्गमति सङ्गतं दिगङ्गनायाः
पारदर्शि हर्षवर्षि लोचनयो र्विलोभनम् ॥

[ ७ ]

क्रियते रूसचीनामेरुकैर्यो विस्फोटो महान्
'वम" संज्ञस्यास्त्रस्याति नूतनस्य भीषणः
विक्षोभमाप्ताऽऽकाश—गंगा किं विततमा
चिन्तितेन विधिना कृत स्सूर्यस्तत श्शोषणः
तेजस्तोय—संगाद्वाष्प--राशि रुत्पतितोऽभू-
ल्लंघ्यान्तरिक्ष मत्र लोके समागतः
सोऽयं नीहारतया कथ्यते ऽ विशेषज्ञै
रङ्गे दिगङ्गनाया वस्त्रोत्तमः सुमितः ॥

[ ८ ]

नेता भारतीयो महान् ख्यातो जवाहरोऽसौ
दृष्ट्वान्नकष्टमत्र कर्मी गतश्चन्द्रं
गो-घूमबाहुल्यं तत्रालोक्य मुदितस्सन्
यत्पिष्ट——वर्षण——मारेभे गततन्द्रम् ।
वायुना विकीर्णमन्तरिक्षे ततऋक्षे तत्
घनसार——चूर्णकल्प मघनत्वं यातम्
व्याप्तं नीहारतया सर्वैरवलोकनीयं
विद्यत इति निश्चितं वै,सत्य मिदं ज्ञातम्।

[ ९ ]

कामिन्यः श्यामलाङ्गवत्यो नाद्यकालिमानं
हारिद्रै र्लेपैस्तिरोदधते पतिसंगताः
पौडरेतिगदितैः शुभ्र -शुभ्रैरङ्ग-रागचूर्णै-
रङ्गान्यावृण्वन्त्येव या वै घनसंयुताः ।
यामिन्यपि कामिनीय माकर्षणमिच्छन्ती
स्वस्मिन् प्राप्ततन्द्रस्यापि चन्द्रस्याल्पतेजसः
दध्रे यांस्त एते रतिघर्षणात्सु —विप्रयुक्ता
भिषतो नीहारकाणां कीर्णा इति सचेतसः।।

[ १० ]

राकेटेना ऽऽ खेटः कानने महाकाशे
क्रोड़ीकृत—बालशश—सिंहस्यास्य शशिनः
रुसामेरुकाभ्यामथ राष्ट्राभ्यां यः क्रियते
नाविदितः कस्याप्यसौ लोकस्याथ रसिनः।।

मन्य आघातं ततः प्राप्ता गुरुं शुभ्रकणा
वेगादुत्पतिता ध्रुवं धूलय इवालग्नाः
स्वच्छेऽम्बरे प्रकृतेरथ परिवर्तन -शीलायाः
प्रोच्यन्ते नीहारादि-शब्दैरिमाः स्थगनाः ।।

[ ११ ]

हिमपातमारब्धं वीक्ष्य ननु पद्मिनीयं
चिन्ताऽऽक्रान्त-चिता नायिकेवेयं विलोक्यते
उत्पत्तिर्यत एव तत एव नाशश्चेत्
हा हन्त रक्षा तर्हि कर्तुं केन शक्यते।
घनतामुपेता इमाः कणिका हिमधाम्नि नूनं
द्रवता मुपेत्य वारि—वाहिनी पथेन किम्
भूत्वा समुद्रः पुनर्वायु —सूर्यतापाभ्या
माकृष्टा नो कणत्व मेत्य यन्ति खेगतिम्?।।

[ १२ ]

शीनादार्तिमापन्नाः कुक्कुर्यो दीनतमा
वक्रीकृत्य देहं भस्मराशिमध्य मागताः
रिक्तरिक्त मुदर मेता यद्यपि वहन्त्यः सन्ति
हन्त नेच्छन्ति किन्तु कवलं वै यथा मृताः ।
श्वाऽयं युवापि च प्रचण्डो महावेगगामी
पाटच्चर मुपेतं गृहे विवरं कर्तुमुद्यतं
स्वामिनो नीरीक्ष्यापि न धावन-प्रबद्धमतिः
केवलं विधत्ते हन्त घोणा-घुर्घुरायितम् ।।

[ १३ ]

मीनाहारलाभेन प्रपीनाऽपि विड़ालीयं
शैत्यदण्डपातेनाति —कम्प—युक्त मंङ्गकं
कथमपि विधातुं तो निश्चलं प्रशक्नोती-
च्छन्त्यपि प्रबुद्धा वीक्ष्य दूरवर्तिमूषिकम् ।
त्राटकमभ्यस्यन्तीव पश्यति गृह-स्वामिन्याः
शय्यासुसज्जितमये शैत्यघ्नं तूलकम्
स्वपितु स्वामिनीयं मे येनाहं द्रुतमेव
पाद —प्रान्ततूलके निलीये हृतशूलकम् ॥

[ १४ ]

सिन्दुवार-पुष्पाणि प्रफुल्लानीमानि वीक्ष्य
मनसि प्रकल्पनेयं जायते सुखावहा
याः शीतभीता इमाः स्वीयं कुचोष्माण-
मर्पयितुं नेहन्ते स्वपन्ति सुनिस्सहाः ।
तासां कृते बाणा निमान्नूतनान् विधाय नूनं
सज्जीचकार कामदेवो नृपसत्तमः
जगदन्तराले ऋते देवं तं कोऽन्यो ब्रूहि
स्वार्थ-शून्य -भावेनाथ कामिन स्सुहृत्तमः॥

[ १५ ]

तूलक मल्पमूल्यमप्यमूल्यं बहुमूल्यं वा
सर्वेषां कृते शीतभीतानां निरन्तरम्
कःशीतभीतोनाद्य बालकः प्रवृद्धो वा
युवको वा ब्रूहि कस्य कुत्र नाद्य कम्पनम्

धार्मिको महानेष परजन्मन्यपि नूनं
भूयासं सतूलकोऽह मित्येवं विचिन्तयन्
वितरति दरिद्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽन्येभ्योऽपि
तूलकानि दीनेभ्योऽति शैत्यं प्रविलोकयन्॥

[ १६ ]

दूरात्तूलराशयो महान्तः क्रयविक्रयाय
सज्जीकृता एते भान्ति वितते वणिगापणे
स्फाटिकानां राशयोऽथ किम्बा सितोपलानां
सञ्चय स्सुधानां वेति बुद्ध्यो विदांगणे।
भ्रान्ता अपि ते ते तत्र निकटीभूय नैजां मतिं
गर्हयन्ति नो वै यत स्तस्यापि प्रयोजनं
कस्य नाद्य साम्राज्ये शिशिरमहीपस्य
मूत्राऽऽवेग माप्ता न के ज्ञात्वा दण्डयोजनम्॥

[ १७ ]

अग्नि र्हिमभेषजमिति वेदेनापि गीतं ऋतं
कुचंवह्निलोभनमिति कविभि र्दृढीकृतम्
अनुवाद—भूतं ध्रुवमेतत्सर्वं मित्येवं
तेन तेना ऽऽ लोचकेन प्रोक्त्या स्थिरीकृतम्।
अत्युष्ण-शोणित स्तथापि यदि महिषाशः
कश्चिन्न प्रतिपत्ति—युक्तस्तेन दृश्यताम्
ज्वलतो हुताशनस्य परितःस्थिता गावोऽपि
गन्तुं नेहन्ते हन्त पुरतः प्रपश्यताम्॥

[ १८ ]

पशव एव कम्पन्ते केवलं न शीतभीताः
प्राणिनो न ते ये स्थिराः शिशिरस्यात्र शासने
ग्रीष्मोप्यागच्छेच्चेदद्य प्रचण्डतरः
शक्तो भवेत्किं क्वचिच्छीतस्यास्य नाशने?।
कदली चलत्पत्रेयं रात्रिशीतकष्ट—दष्टा
क्रन्दतीव मौनवती प्रात र्हन्त दृश्यताम्
नोष्णता ऽश्रुबिन्दुषु तर्हि कथमेवं ब्रूयाश्चे-
च्छीतसाम्राज्यं तत्र बीजं निश्चीयताम् ॥

[ १९ ]

आतप! गता बे रौद्रता सा क्वाद्य वद नूनं
ग्रीष्मोदये यासीदये! सर्वप्रणिदुःखदा
साचेदद्य तिष्ठेत्त्वयि शीतार्तजनबन्धो!
गर्वान्धः शिशिरः किं प्रभवेदेव मेकदा।
मा वा सा तिष्ठतु वर्तमानं ते यद्रूपं
तेनाप्यहोरात्रं यदि तिष्ठेस्त्वं सुचिरम्
सौभाग्यं कीदृक् तर्हि तूलकादि—हीनानां
दीतानामद्यभवेत् भाग्यं क्व तद्रुचिरम् ॥

[ २० ]

निस्सारं ब्रूते कः पलाल! त्वां मूर्खतमो
जानीते सारवत्व —लक्षणमसौ किमये ?
ताप एव जीवन मिति मूर्खोऽपि जानीते
तापासत्त्वदृष्ट्या वेत्ति प्राण—हानि हृदये

तापस्य मात्रा त्वयि कियतीति किं ब्रूमः
त्वामेव कवचीकृत्य शिशिरेऽस्मिन् महीपतौ
प्राणप्रयाणं शीतवाणं ननु वर्षति सति
जीवामोऽतिदीना वयं किं नो वदासुमतौ।।

[ २१ ]

भूते ! वज्रतुल्या त्वं शीतकष्ट—वारणेऽसि
तत्त्वामावरणीकृत्य हिम—शैले शङ्करः
सद्देवदारुद्रुम —वेदिका—विबद्धाऽऽसन—
स्त्राटकमुरीकुर्वं न्नास्ते ह्यभयङ्करः।
गच्छत्वागच्छतु वा प्रालेयवाताशनिः
शिशिर—रूपधारि—कामहेतिभूत श्शतशः
किन्तु त्वत्कवचोपरि किमसौ करोतु नाम
सम्वृताङ्ग——भूपोपरि शत्रुर्भवत्यवशः ।।

[ २२ ]

त्वं चेन्ना ऽ भविष्यो भस्म! निर्वस्त्रसाधूना
मङ्गोपरि लिप्तं तै रजस्त्रं प्रविहारिभिः
वृक्षस्याधस्तात् क्वचिन्नद्यास्तटे वा क्वचि
त्पर्वतस्य शृंगे क्वचि न्निर्गृह-वास-कारिभिः।
अङ्गानि तेषां तर्हि शिशिरोऽसौ भिन्द्याद्वा
निश्चितमेव छिन्द्याद्वा पवनेनाभि-सङ्गतः
नीहार-कणिकाया-वितताया व्याजा त्ततो
मन्ये त्वां हिम[illegible] धृत एव [illegible]।।

[ २३ ]

सर्प? किं न सर्पस्यद्य निवसन् कुण्डलीभूय
निगृ्होऽतिदीनता मुपेतो मौषिके विले ?
गर्वो विषोष्मणाऽथ जनितस्ते क्वगतोऽद्य
क्वगता फणाफूत्कृतिरपि कस्मात् क्षतिः सकले।
आं ज्ञातं प्रालेयकणजात——जड़िमानं
मन्त्रिणं विधायाऽसौ पवनं—नृपशिशिरः
एकच्छत्रराज्यं यतस्तनुते ग्रीष्मदर्पहारी
ग्रीष्म—सहचारी तनो भीतो धृतविवरः॥

[ २४ ]

क्व गतं तेऽमानं गान मद्य वद मशक! त्वं
सर्वाङ्गावारचारो—हन्ताद्य ते क्व गतः ?
केवलं न मैत्री ते ग्रीष्मोदयेन साकं
वर्षाऽपि हर्षायैव जलदागमा भवतः।
आं ज्ञात मतियोगं मन्यसे न साधु कीट !
शैत्योष्मातियोगवन्तौ त्यजसि ग्रीष्मशि-शिरौ
आवृतप्रणाल्यामपि नोष्म—शैत्यगतिबाधा
यत्र ते निवासः शुभः तत्ते न तौ रुचिरौ।

[ २५ ]

सञ्चित—पलालासने विष्टाऽऽशुप्रसववती
शैशरशीत—सञ्चारेण भीताऽति प्रवेपते
आक्रोशति भगवन्तं जानन्नपि सर्वतत्त्वं
शर्वैवं विश्वसे कुतो दीने किं कृपा न ते।

यासामपि सुबहूनि वस्त्राण्यत्र परिधातु
ता अप्यपत्यानेक—वार—मूत्र—संगताः
शिशिरस्य रात्रावत्र किं न स्यु दुःखत्रत्यः
सत्यो ननु सत्यः शिव ! निद्राभंगमागताः॥

[ २६ ]

कामकार्यकारी तत्सख्यं कुसुमाऽऽकर एष
वहतीति प्रवादोऽयं कथं नाम सङ्गतः।
मन्ये न शिशिरोप्यस्य कुरुते साहाय्यमल्पं
यामिन्या शीतभीतिमत्या पतिःसङ्गतः।
वार्धक्यात् ध्वज—भंगमाप्तोऽपि वृद्धो यदि
शिशिरस्य शासनेऽत्र वृद्धाऽऽलिंगने मतिं
कुरुते तर्हि शिशिरं वद कस्माद्वसन्तात्ततः
कामाल्प-कार्यकरं वक्तु कुरुषे मतिम्? ।

[ २७ ]

भास्याकाश ! सत्यमेव वेदान्तिब्रह्मकल्पो
यत्त्वं शिशिराऽऽगमेऽपि नान्यवत् प्रवेपसे।
रात्रिंदिनं वा समागच्छत्वथ गच्छतु वा
निर्विकार-रूपस्त्वं न तिष्ठसि कस्यचिद्वशे।
अथवा सत्यमुक्तं नो भ्रान्तं मया विषयेऽस्मिन्
रहितः शीतभीत्या नो त्वमपीति निश्चितम्
व्याप्तं नीहारं यतः प्रातरङ्गे वस्त्रतया
सत्यार्थं नियमेनत्वा वीक्षे त्वामुपस्थितम्॥

[ २८ ]

गन्तुःस्त्रेष्ट—मार्गगाय मार्ग! त्वं कुत्राप्यथ
यद्यपि तथा नो दुःखदाता यथा ग्रैष्मः
स्फोटाल्लॉजकल्पान्नो पदयोर्ददासि सखे!
पद्भ्यां गच्छतामपीति नो तद्वद् भीष्मः।
किन्तु हिमकणिका इमा श्चलतां पदकमलानां
शोभामाहरन्त्यो मौक्तिकाभाः खेदयन्त्ययें!
सुखिनस्ततो गृहिणस्ते प्रातरग्नि—सेवितया
वक्षसि पदपातं ते नैव हि कुर्वन्ति ये ॥

[ २९ ]

शिशिरोऽयं भूपः कियानद्य भाति वैभववान्
मरकतमयी वाद्य भूमिर्भूरि भासते
दिशिदिशि यवाङ्कुराणि हारीत-हरितानि
तृप्तिःकिं प्रपश्यतोऽद्य भाव! ब्रूहि जायते!।
यद्यपि तानि शारदीये नवरात्रे पूजा-गृहे
दृश्यन्ते पूर्वमपि किन्तु तानि नैवम्
विरहिण्याः कपोलवद्यस्मात्तानि पीतानि
तान्येतच्छोभीनीति ब्रूहि ततो मैवम् ॥

[ ३० ]

खेसाटिकालतिका इमा धान्यक्षेत्रविततास्खलु
कीदृश्यो मनोहरा विभान्तीति प्रलोक्यताम् ।
ईषद्रक्तनील —लघु—पुष्पाणि जटितानीव
रत्नानि सुबहून्यासु हं हो सुविलोक्यताम् ।

एतत्सवर्णा इमा एतच्छाकसुचयिन्यो
विष्टाः क्षेत्रमध्ये पृथग्—भूता नैव कैरपि
दृष्टाः सुशक्या वा द्रष्टुमिति सत्यमेव
कथ्यते प्रबुध्दतयाऽऽलोचितमपि यैरपि।।

[ ३१ ]

सर्षपस्य शाकं ननु पच्यमान मामोदं
तनुते कीदृगत्र चित्र मित्येतत्कथा—पराः
गच्छन्तः पथिका इमे सुस्मृतगृहस्थितयः
नातप-राशिकष्टमत्र गन्तारःश्रिताम्बराः।
सत्येव सूर्ये शीतभीतिचय—भञ्जनेऽस्मिन्
भूयास्म प्राप्तगृहा इत्येवं त्वरान्विताः
सन्तोप्यये मुखकमलं सर्षपशाकचयिनीनां
पश्यन्तः सुविस्मृत्या प्रजायन्ते समाश्रिताः।

[ ३२ ]

अतसी ससस्या वश्यभावं नयन्ती क्षेत्र—
राशिं किं न राजत इयं गच्छन्ती प्रपश्यताम्
कस्मात् प्रशस्तेय मुपभोगे सौख्यं नो
धत्ते यत इत्येवं ब्रूषे चेत् प्रपश्यताम्।
सप्यं भक्तरोटिकादि-तुल्यं -भक्ष्यत्वं नात्र
किन्तु मूल्यमस्या ध्रुवमाधिक्येन, संयुताः
प्राप्ताधिक-मूल्या इतः कर्षका विराजन्ते
भिन्नोपकरण-क्रय -शक्त्या समन्विताः।।

[ ३३ ]

लतिकाः कलायानां कीदृश्यः 'प्रसन्ना इमाः
क्षेत्रेऽवलोक्यन्ते रक्तश्वेत———कुसुमाः
सहकाराश्रयिण्यो मालत्य इव शोभमाना
पुष्टबीज-फलिकाचयवत्त्वाश्रित—सुषमाः।
सहकार—स्थानीयः कोयमिति जिज्ञासा—
चेदेवमवगच्छ सर्षपमेव बहुलम्
अस्ति न किमत्राऽपि तादृग्विधलतिकाना-
मङ्गाश्रितानां धारणार्थं यत् स्ववलम्।।

[ ३४ ]

चणका इमे राजन्ते क्वचन क्षेत्रभूमाविह
शाकाय प्रलूनोर्ध्वं —पत्रतया प्रसृताः
ग्रथिताधःफलजाला स्तत एत्राहूत—बाला-
स्तासां हरिताम्वराणि विहसन्तो ललिताः।
पुष्टि—प्रदतयाऽत्यन्तं यस्मादन्नचणताऽत्र
तस्मादेव मन्ये नाम जातं साधु चणकम्
यच्छ्रवणा दवतीर्णः कस्य स्मृतिपथेऽनाद्य
चाणक्यश्चण को वा कुरुते रणरणकम्।

[ ३५ ]

ख्यातं यद्यज्ञयोगि पथ्यं चात्यन्तं मतं
तेषां प्ररोहा इमे राजन्ते परितः
यद्व्याप्ति रेतादृशी घनतामावहन्ती ननु
भूरेव न घनतावती तादृश्यो हरितः।

अन्नं तद्यवसंज्ञं प्रकृतिर्यवागूनां
दीर्घ——शूकशालितया भिन्नं गोधूमात्
सर्वानिष्टजातं खलु घातमुपनीय तूर्णं
पूर्णमिष्टराशिजनकं घनकारि होमात् ॥

[ ३६ ]

राजन्ते मसूरा इमे शूरा इव रणक्षेत्रे
क्षेत्रे क्षेत्र—पालकेन पूर्णं समीकृते
घनता मुपेता ननु घनता मानयन्तो भूमि
मविरलतया घनकान्त्या निखिले ललितीकृते
का शूरतुल्यता मसूरेष्विति जिज्ञासा
कस्यचिद् भवेच्चेत् तेन सावधानं श्रूयताम्
शब्दतो नपुंशक मप्यर्थतोऽनपुंसकमन्न-
मस्ति यतो राक्षसीं बुभूक्षां हन्ति बुध्यताम् ॥

[ ३७ ]

कालै र्नो धूमैः किन्तु गोधूमक्षुपैः कालैः—
र्भरितान्येतानि साधु क्षेत्राण्यथ राजन्ते
नूतनया पद्धत्या कर्षका इदानीं यत्
कृषिकर्मकरणे संलग्ना विराजन्ते ।
एतास्तत्पत्न्यो धृतयत्ना वास्तूकचयने
गायन्ति लोकगीतं मुदिताः फलद्वैतं
पश्यन्त्यः किं तदिति चेत्ते जिज्ञासा शृणु
शाकपाक — गोधूमबाधकापनयने ॥

[ ३८ ]

भस्माऽऽवृतकायतया तिष्ठन् हिमालयेऽपि
भगवान् भवश्चेच्छीतभीतिं नैव गच्छति
सन्नप्यभगवानह मस्मि किं न भवनामा
भस्माप्यावरणतया नो वा मां नहीच्छति।
निस्सारस्संसारोऽति शीतभीति- भंगकाम
एव मवगच्छन्न भूद् भस्मावृतकायः
स्वच्छं तद्भस्मैव लोकैर्नीहारतया
कथ्यते न किञ्चिदन्यदिति वच्म्यनुपायः॥

इति ऋतुकवित्वे शिशिर—कवित्वम्

——०——

माता भगवती यस्य पिता च ववुनन्दनः
चन्द्रशेखरशर्मा तु यस्यासीत्प्रथमो गुरुः १॥

द्वितीयस्तर्कवागीशः सम्राट्सम्मानभाजनम्।
फणिभूषणशर्मोद्यद्यशः — कुमुदबान्धवः २॥

स्फुरन्महामहोपाध्यायोपाधिः शिवतां गतः।
वामाचरणशर्माऽऽसीत्तृतीयः शास्त्रवारिधिः ३॥

सीताऽऽसीत्प्रथमा पत्नी यज्जाताऽभूदरुन्धती।
पद्मा भवनपद्मेव द्वितीया यत्सधर्मिणी ४॥

तेनानन्देन मन्देन खण्डकाव्य मिदं कृतम् ।
नानाग्रन्थ-विनिर्मात्रा भाषासु विविधास्वपि५ ।

एतेन सुकवित्वेन कालवर्णनरूपिणा ।
प्रसीदतु महाकालो महाकाली यदाश्रिता६।।

इति कवितार्किकवर्य-न्यायाचार्य,-वेदान्तवागीश,-सकलदर्शन-कानन-सञ्चार-पञ्चान, लक्ष्मणपुर-विश्वविद्यालय-प्राच्यसंस्कृत-विभागाध्यक्ष-श्रीमदानन्द झा—विरचितं

ऋतुकवित्वं समाप्तम् ।

मृत्युञ्जयो धनञ्जयो रिपुञ्जयो यदात्मजाः
वसुन्धरा ऋतम्भरा प्रियम्वदा यदात्मजाः।

आनन्द-काव्य-कोविदेन तेन वै विनिर्मिता
मन्दाकिनीय मस्तु लीन-पीन-मीन मानसा १।।

लखनऊ——विश्व—— विद्यालयोपाधिपो-
भात्यशोको कुमारोऽत्र ननु सुस्तफी ।
यत्प्रशास्त्याऽग्नि काण्डोत्थ—वाधा—हृतिः
छात्र—विद्रोह—शान्ति स्तथा लक्ष्यते २।।

——o——

# शृंगार-शेर-शतकम्

प्रणिपत्य भारतीं मयाऽऽनन्देन रच्यते ।
शृंगार-शेर-शतकमिद्धं — मोददायकम् ।।
देवो रतीश्वरः सदा प्रणम्यतां समैः ।
सृष्टिः समा समाश्रिता यमेकमेव हि ।।
उत्पद्यते विना किमत्र शक्त—मैथुनम् ।
शक्ति—मैथुनं विना शिवः शवः स्मृतः ।।
शिवशक्ति-सामरस्य मेव शक्तमैथुनम् ।
व्यक्तीकृतं काव्येन तच्छृंगार-शब्दितम् ।।
शृंगार एक एव रसो भोज—सम्मतः ।
प्राथम्यतो मुख्यत्व मस्य सर्व—सम्मतम् ।।
नहि यं बिना जगज्जनि र्मुख्यःस एव हि ।
श्रुति-युक्तिभिः सिद्धो न किं देवो महेश्वरः ।।
प्रतिपादितं मयेदमत्र कामदर्शनम् ।
व्याहार—मात्रतो प्यतोऽथ रस्यतां रसः ।।

———

( १ )

कीदृश्ययेऽसि निर्दया, दयोदयो न ते।
भिक्षापि भिक्षुकाय किं न दीयते त्वया।।

( २ )

किं निर्मितं हृदस्ति प्रस्तरेण वेधसा।
किं वाऽसि हन्त मूर्ति रेव हृद्विनाकृता।।

( ३ )

देवी नु दिव्य —लोकत स्त्वमागता स्यये।
हा हन्त !! लोकलोकनं न शिक्षितं त्वया।।

( ४ )

पिहितं किमञ्चलेन हेमकुम्भ-युग्मकम्।
जानासि पश्यतोहरं वृथैव मां कथम्।

.( ५ )

चन्द्रेऽत्र केयमद्य विद्यतेऽथ पूर्णिमा।
बद्धोर घनान्धकार एष राजते यया।।

( ६ )

मन्ये तवाननं कथं चन्द्रं हिमालयम्।
अत्र प्रफुल्लमस्ति पद्मयुग्मकं न किम्।।

( ७ )

पद्मे शशी न वा तथा तस्मिश्च पंकजम्।
किमिदं द्वयं मुखं तवेति विस्मयो महान्।।

[ ८ ]

दूरत्व मस्ति बाधकं द्वयो र्न मेलने ।
शशि-सागरौ बभूवतुः कदाऽथ सन्निधौ ।।

[ ९ ]

प्रेम्णो गतिश्चित्रेति नात्र कोऽपि संशयः ।
जानाति कः प्रेमा कथं जलजात—सूर्ययोः ।।

[ १० ]

गच्छेच्छिरो मदीय मेक मस्तु तत्तथा ।
दत्तानि नो बहूनि तानि जानकीहृता? ।।

[ ११ ]

नो वीक्ष्यते त्वयाऽथ नैव वीक्ष्यता मये ।
नियमो न कोऽपि विद्यते वीक्षा परस्परम् ।

[ १२ ]

अन्यत्र नास्ति चेद्रतिर्मैवास्तु सा ध्रुवम् ।
न क्वापि सा भवेत् क्व लब्ध माशु कथ्यताम् ।

[ १३ ]

कमलेक्षणा प्रकथ्यसे लोकैरये कथम् ।
वाणेक्षणासि यज्जनो दृष्टो विहन्यते ।।

[ १४ ]

कमलेक्षणा प्रकथ्यसे लोकैरये कथम् ।
वाणेक्षणासि यज्जनो दृष्टा विहन्यते ।।

[ १५ ]

नो चक्षुषी बाणाविमाविति बोधयस्यये ।
किं कज्जलान्तलेखया पुंखस्य योजनात् ।।

[ १६ ]

भ्रूयुग्मयो भुंजङ्गता सत्यं निरीक्ष्यते ।
चन्द्रामृतस्य पानहेतवे यदागतिः ।।

[ १७ ]

प्रेमास्ति मय्यति ध्रुवं निद्रा यतो हृता ।
मत्खेदहारिणीं कथं नो चेद्विशङ्कसे ।।

[ १८ ]

किं किं हृदन्तरेऽस्त्यहं वक्तुं कथं क्षमः ।
लभ्यते न तादृशी यया निवेद्यताम् ।।

[ १९ ]

दृष्टिं ददासि नैव चेन्न देहि तामये ।
मनसि प्रविश्य दर्शयामि रूपमद्भुतम् ।।

[ २० ]

नोचेद्ददासि दर्शनं विनिर्गताऽन्तिकात् ।
किं तेन ? हार्द्दर्पणे स्वकेऽवलोक्यसे ।।

[ २१ ]

जानामि चक्षुषी ददासि नोऽत्रकारणम् ।
हृद्दर्पणे स्वके हि मां निरीक्षसे सदा ।।

[ २२ ]

अस्तीह कोऽत्र यस्य नो मनस्त्वया हृतम् ।
हा हन्त!!नास्ति कोऽपि किं,यस्त्वन्मनोहरेत्॥

[ २३ ]

नो तदि्दनं दिनन्तु यत्र दर्शनं न ते ।
आयामिनी सा यामिनी नो यामिनी तथा॥

[ २४ ]

ब्रूहि किं करोष्युरोज—वीक्षणं स्वयम् ।
वीक्षसे किमत्र लग्न—दृष्टिजालकम् ॥

[ २५ ]

कस्य दृष्टिरेति नोऽथ यत्र तून्नतिः ।
किं न सास्त्युरोजयोः?कुतोऽविनिश्चयः ॥

[ २६ ]

रूपवापिका त्वमत्र नैव संशयः ।
अम्बुजान्यमूनि फुल्लतां गतानि यत् ॥

[ २७ ]

नूपुराविमौ न ते हंसौ सकूजनौ
रक्त—पद्म—युग्म—लोभतः समागतौ ॥

[ २८ ]

ते मुखं शशीत्यये कथं नु कथ्यताम् ।
यत् कलंक-शालि नो, शशी न कथ्यते ॥

[ २९ ]

काल — मेघमण्डली सुधाकरोपरि ।
भ्राजते ततो निशारकरत्ववन्मुखम् ।।

[ ३० ]

नासिका—शुकीय मागता भ्रमेण किम् ।
ओष्ठ—विम्ब—खण्डनाय त्वन्मुखेऽधुना? ।।

[ ३१ ]

भ्रूयुगोरगद्वयी किमागता मुखम् ।
चन्द्र —विम्वमण्डलं सुधापिपास्या ।।

[ ३२ ]

मान्मथो रथो विलोक्यते तवाननम् ।
यत्कपोलयो विभाति कुण्डल—द्वयम् ।।

[ ३३ ]

त्वन्मुखं विभावरीभिरावृतं ध्रुवम् ।
विद्विषन् जनो धृत स्तयाऽथ गाढ़या ।।

[ ३४ ]

कम्बुकण्ठिनीति यज्जनै निगद्यसे ।
रूपसागरत्वयुक् त्वमस्ययि ! ततः ।।

[ ३५ ]

कृष्णातारकद्वयी — युते हि लोचने ।
कृष्णमौक्तिकद्वयी—युते प्रशुक्तिके ।।

[ ३६ ]

कनीनिकाच्छलेन किं विषं विभर्ति ते।

लोचनं, न चेत्ततो यूनां कथं हृतिः? ॥

[ ३७ ]

कामिजीव—घातपातकं विभर्ति ते।

कज्जलच्छलेन लोचनं न संशयः॥

[ ३८ ]

कामिजीव—घात—पातकं सुरक्षितम्।

कज्जलच्छलेन हन्त, धार्यते त्वया॥

[ ३९ ]

प्रेमकारिणो निहन्ति यद्विलोकिनः।

कज्जलेन कालिमैव तस्य मण्डनम्॥

[ ४० ]

पूर्णदृष्टितो निरीक्षते कथं वृथा।

स्थानमसस्ति नोहृदीति दर्श्यते त्वया।

[ ४१ ]

हृदगृहे ददासि नो लघीयसीं स्थितिम्।

पूर्णदेहतः स्थितिं तु तत्र नार्थये॥

[ ४२ ]

नाहमस्मि ते हृदीति नास्ति दूनता।

तत्र कोऽपि नास्ति तत्प्रदूयते मनः॥

[ ४३ ]

नीरसासि कीदृशी कुतो न वीक्षसे ।
लोचनक्षतिः कुतः, किमस्मि कण्डकम् ॥

( ४४ )

धूलिरस्मि किं यतो व्यथां गमिष्यति ।
लोचनेऽथ ते कुतो विभेषि कामिनि ॥

( ४५ )

नाहमस्मि ते हृदीति नास्ति दूनता ।
स्थितोऽस्ति कोऽपि तत्र तत् प्रदूयते मनः ॥

( ४६ )

त्वदोष्ठ तुल्य - विम्बखण्नेन धन्यताम् ।
विभर्ति किं न कथ्यता मसौ शुकः कृती ॥

( ४७ )

अन्धकार मादृये कचस्य साम्यतः !
हन्त तत्र नो लभे सुखं , परन्तु तत् ॥

( ४८ )

चन्द्रमादृये तवास्य—साम्यतो यदा ।
दुखदः परन्त्व सौ प्रजायते तदा ॥

( ४९ )

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा ।
सर्वमेव सर्वथा गुरुं निरीक्षसे ? ॥

[ ५० ]

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा।
पश्य साधु कोऽपि नात्र दृष्टि-शक्तिमान् ।।

[ ५१ ]

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा।
को निरीक्षतेऽत्र यत्र कोऽपि नास्ति ना ।।

[ ५२ ]

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा।
अस्तु लोचनं मया विमुद्रितं कृतम् ।।

[ ५३ ]

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा।
अत्र सर्व एव सन्ति किं न मादृशाः ।।

[ ५४ ]

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा।
शिक्षितं न चेदिदं किमत्र शिक्षितम् ।।

[ ५५ ]

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा।
लज्जा कदापि याति किं निरीक्षणं विना।

[ ५६ ]

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा।
लज्जयाऽलमत्र सऽथ हीयतां सखी ।।

[ ५७ ]

लज्जसे निरीक्षणे सुखी भवाम्यहम् ।
लज्जा यतोऽनुमापयत्यथ स्थितिं रतेः ।।

[ ५८ ]

लज्जसे निरीक्षणे त्वमत्र किं वृथा ।
सन्ति येऽत्र कोऽस्ति तेषु नोऽत्र मादृशः ।।

[ ५९ ]

किं स्वयं निरीक्षसे स्तनौ समुद्गतौ ।
एतयो स्समुन्नतिं वृथेति कथ्यते! ।।

[ ६० ]

किं स्वयं निरीक्षसे स्तनौ समुद्गतौ ।
तदुन्नतिं वृथा न यन्निरीक्ष्यते जनैः !।

[ ६१ ]

किं स्वयं निरीक्षसे स्तनौ समुद्गतौ ।
पयोधरौ पमोधरौ न चेद् वृथा तदा !;।

[ ६२ ]

किं स्वयं निरीक्षसे स्तनौ समुद्गतौ ।
पयोधरौ पयोधरौ बभूवतुः कुतः ?।।

[ ६३ ]

किं स्वयं निरीक्षसे पयोधरावुभौ ।
अञ्चलोन्नतिस्ततः प्रजायते नवा! ।।

[ ६४ ]

किं स्वयं निरीक्षसे पयोधरावुभौ ।
दृश्याविमौ जनै र्न छादिता विमौ यतः ?।।

[ ६५ ]

किं स्वयं निरीक्षसे स्तनौ समुद्गतौ ।
न व्रणा विमौ व्रणप्रदौ निरीक्षके ?।।

[ ६६ ]

वदत स्तनौ चलाविमौ किमिहास्ति निश्चलम् ।
भोगस्पृहास्ति चेत्तदा द्रुतमेव युज्यताम् ।।

[ ६७ ]

वदत स्तनौ चलाविमावाच्छादितावपि ।
आच्छादितोऽपि कम्पते यः प्राप्तमप्रर्दनः ।।

[ ६८ ]

वदतः स्तनौ चलाविमावाच्छादितौ ननु ।
हृत्कोमलं न तत्र विद्यते कठोरता ।।

[ ६९ ]

वदतः स्तनौ चलाविमावाच्छादितावपि ।
अच्छादनं गुणस्य कर्मणस्तु नैव हि? ।

[ ७० ]

वदतः स्तनौ चलाविमावाच्छादितौ ननु ।
उत्कम्पि हृदवि चालयत्यावां न चञ्चलौ ।।

[ ७१ ]

वदतः स्तनौ चलाविमावाच्छादितावपि ।
आवां स्तनौ न मानसस्थचक्रदम्पती? ।।

[ ७२ ]

वदतः स्तनौ चलाविमावाच्छादितौ नु किम् ।
आवां स्तनौ न हेम–घटावेत्य वीक्ष्यताम् ।।

[ ७३ ]

वदतः स्तनौ चलाविमावाच्छादितौ नु किम् ।
आवां समुत्थितौ भटौ योद्धुं न संशयः? ।।

[ ७४ ]

वदतः स्तनौ चलाविमावाच्छादितौ नु किम् ।
आवां स्वयं समुत्थितावुत्थापितौ न हि?।।

[ ७५ ]

वदतः स्तनौ, चलाविमवाच्छादितौ नु किम् ।
कीदृशोऽसि नीरसो न यद्विलोक्यते?।।

[ ७६ ]

मन्ये तवाननं कथं पद्मं प्रफुल्लितम् ।
संङ्कोचमेति सन्न यन्निशीथिनी–मुखे ।।

[ ७७ ]

मन्ये तवाऽऽननं कथं पद्मं प्रफुल्लितम् ।
हिमवालतेऽपि सूर्यवत् प्रदीप्तिमद्युतः ।।

[ ७८ ]

मन्ये तवाऽऽननं कथं पद्मं प्रफुल्लितम् ।
पद्मेऽन्यपद्म—सम्भवो न दृश्यते क्वचित् ॥

[ ७९ ]

मन्ये तवाऽऽननं कथं पद्मं प्रफुल्लितम् ।
पक्वविम्बसम्भवो न पङ्कजे क्वचित् ॥

[ ८० ]

मन्ये तवाऽऽननं कथं पद्मं प्रफुल्लितम् ।
कीरान्वयो न तत्र लोकवेद—सम्मतः ॥

[ ८१ ]

कीदृशोऽसि निर्दयो दयोदयो न ते ।
भिक्षापि भिक्षुकीकरे न क्षीयते त्वया ॥

[ ८२ ]

कीदृशोऽसि निर्दयो दयोदयो न ते ।
प्राण एष गन्तु मुद्यत स्त्वया विना ॥

[ ८३ ]

देवो नु दिव्य लोकत स्त्वमागतोस्यये ।
हा हन्त! ! लोक-लोकनं न शिक्षियं त्वया? ॥

[ ८४ ]

खचितेव दृष्टि रास किं न मत्कपोलयोः।
किं नाहमस्मि तौ न किं दृष्टि नं तेऽथ सा? ॥

[ ८५ ]

अगमद्दिनं क्व तद्यदा स्वेदः सुगन्धितः ।
व्यर्थं यतोऽद्य हन्त पुष्पसारमर्द्दनम् ।।

[ ८६ ]

तस्मै न देह्यये दृशं कथमामि नो भृशम् ।
सविधे न मे कृथा स्तथेति प्रार्थ्यं से मया ।।

[ ८७ ]

लग्नं मनस्तथा ममाद्य दृष्टिमुद्रणम् ।
व्यर्थं यत स्तथापि साधु दृश्यसे मया ।।

[ ८८ ]

सत्यं तवान्तिके मया सुप्रेषिता सखी ।
रसना क्व शक्यते तया लब्धुं परन्तु मे ।।

[ ८९ ]

लब्धुं क्व शक्यते मया दृष्टिःस्थिराऽथ सा ।
भवदीय——दर्शनं यया कर्तुं प्रशक्ष्यते ।।

[ ९० ]

कामस्य वशे विद्यसे सत्यं न संशयः ।
अन्यथा प्रपीडयेः कथं वदाऽऽशु माम् ? ।।

[ ९१ ]

मत्कृते न मन्मथोऽस्ति पुष्प—वाणधृक् ।
त्वत्कृते हि मन्मथोऽसि पुष्पवाणधृक् ।।

[ ९२ ]

हा हन्त!! कुत्र यामि किं करोमि पीड़िता।
मूर्च्छापि नैति या हरेद्धृदयस्य दुःस्थितिम ॥

[ ९३ ]

त्वं नैषि चेद्वधस्य पातकी न किं भवेः।
खड्गादि—घातजो हि केवलं बधो न यत् ॥

[ ९४ ]

आज्ञया गुरोस्त्वया ऽथ चेद् गतं गतम्।
कथमेषि नो, गुरु र्न तत्र बाधको यतः ॥

[ ९५ ]

गतं मतं निदेशतो गुरोस्त्वया यदि।
अधुना तवाऽऽगमं विना न जीवतुं क्षमे ॥

[ ९६ ]

त्वद्वियोगिनी करोम्युपायमत्र किम्।
निद्राऽपि नैति या त्वया स्वप्नेऽपि योजयेत् ॥

[ ९७ ]

त्वच्चित्र——सम्मुखी यदा रोदिम्यनेकशः।
लज्जे सखी विबोधिता "तच्चित्रमस्ति ते' ॥

[ ९८ ]

धर्मोऽपि किं न वीक्ष्यते मन्वादि—सम्मतः।
मन्मथो न मन्मथोऽस्ति त्वत्कृते किमु ॥

[ ९९ ]

प्राणेश ! पादयोः पतामि त्वद्वियोगिनी ।
विधीयतां समेत्य शीघ्रमेव योगिनी ।।

[ १०० ]

स्यादवश्यमागम स्तवेति मन्यताम् ।
सति जीवने कुतस्तदा नागम्यते मम ।।

———

व्यंग्य मेषु सामरस्य—मेव निश्चितम् ।
वैराग्यमस्तु वाच्य मत्र कुत्रचिन्न किम् ।
अन्यथा रसानुभूतिरेव नो भवेत् ।
सामाजिके सहृत्त्व -सम्भवेऽपि प्रस्फुटम् ।।
रसैकताऽऽदरेऽद्भुतः करुणोऽथवोच्यताम् ।
शृंगार एव, नाम—भेदतो नहि क्षतिः ।।
भिन्नै जनैरेकोऽपि किं भिन्नै र्न नामभिः ।
कथ्यते ? विमति र्न काऽपि तत्र दृश्यते ।।
कारुण्यं मद्भुतोऽथवा नऽऽकर्षणं विना ।
रतिमूल मेव तच्च केन नानुभूयते ।।
संक्षेऽपतोऽत्र कामदर्शनं निवेदितम् ।
रहस्यवेदिगम्य मेव नान्यवेदनम् ।।

इति कामदर्शनम् ।।

इति कवितार्किकवर्य-सकलदर्शनकानन-सञ्चार पञ्चानन —लखनऊ-विश्वविद्यालय-प्राच्य-संस्कृत विभाग-प्रधान-श्रीमदानन्द झा न्यायाचार्य-विरचितं शृंगारशेर—शतकम् समाप्तम् ।


इति आनन्द—मधुमन्दाकिनी-प्रथम-भागः ।



रसमन्दाकिन्यन्तर्गततया—

# प्रकाशनीयानि

## संस्कृत-पुस्तकानि

(१) नेतृकल्लोलिनी
(२) ध्वनि-कल्लोलिनी
(३) नीति-कल्लोलिनी
(४) रूपकद्वयी
(५) विचार-वीथी
(६) नृरत्नचर्चा